आर्य जगत्

10.1

आवरण पृष्ठ पर गया महात्मा हंसराज जी का यह चित्र सन् १८९० के आसपास का, लगभग ९० साल पुराना, है। इस चित्र से उस संकल्प का आभास हो जाता है जिसके कारण आगे चल कर यह युवक 'त्याग-मूर्ति' और महात्मा कहलाया।
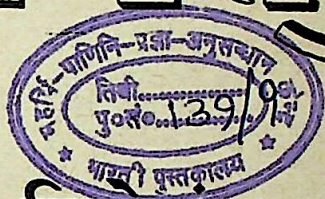
महात्मा हंसराज विशेषांक

१६ अप्रैल, १६८१

सम्पादक

क्षितीश वेदालंकार

वर्ष ४४] [अंक—१४,१५,१६

सृष्टि संवत्—१६७,२६,४६,०८०
दयानन्दाब्द—१५७
विक्रम संवत्—२०३८

वार्षिक मूल्य—१० रु०
इस अंक का मूल्य—५ रु०

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१

मनुष्य का मोल

मनुष्य के जीवन का एक ध्येय होना चाहिए, एक केन्द्र, जहां पहुंच कर वह अपना जीवन कुर्बान कर सके, अपनी धन-दौलत और बाल-बच्चों को आसानी से छोड़ सके। एक स्थान होना चाहिए—जहां पहुंच कर गर्व से वह कह सके कि चाहे प्राण चले जाएं, चाहे सब ओर से विनाश का ताण्डव घेर ले, पर वह उस स्थान से लौटेगा नहीं, पीछे नहीं हटेगा। ऐसे स्थान पर ही मनुष्य का वास्तविक चरित्र और उसका वास्तविक मोल मालूम होता है।

—महात्मा हंसराज
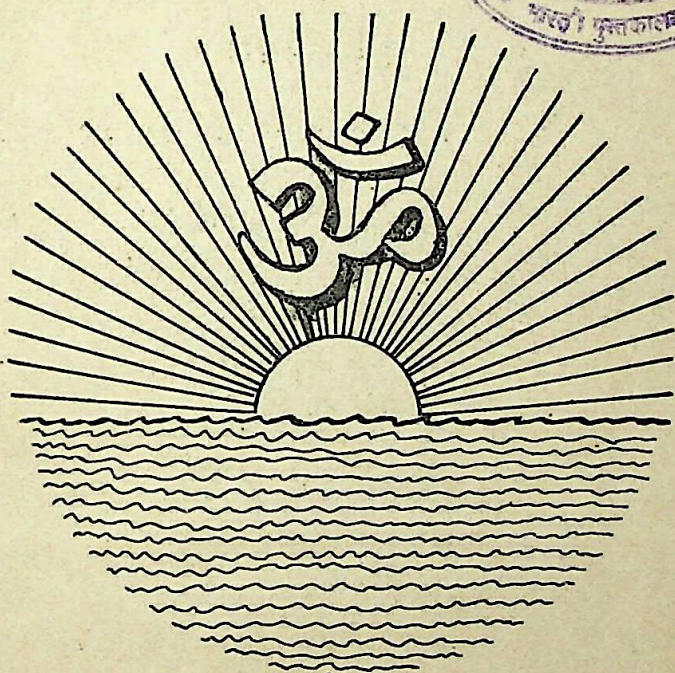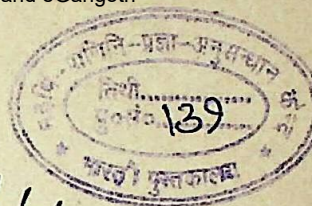
ये चित् पूर्व ऋतसाता
ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम
तपोजां अपि गच्छतात् ॥

अथर्व वेद १८/२/१५

हमारे जो पूर्वज ऋत (सत्य) का पालन करने वाले, ऋत से उत्पन्न और ऋत को बढ़ाने वाले हैं, हे सर्वनियन्ता प्रभो ! उन तप की सन्तान, त्यागी-तपस्वी, ऋषि-तुल्य महापुरुषों के पथ का हम अनुसरण कर सकें ।

गुरु-स्तवन

स्व० राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

पद-रज दो, अंजन दृग आंजू,
अन्तर-तिमिर हरो हे !
अमृत-परस दो, पल-पल चंचल
मन को अचल करो हे !

न्यौछावर हो सकूं चरण पर,
ऐसी विमल सुमति दो,
उर के अन्ध विवर में अपनी
जगमग ज्योति भरो हे !

दृश्य-अदृश्य जहां जो कुछ है,
सभी तत्त्व गुरुमय है,
एक प्रार्थना सुनो, हृदय के
शतदल पर उतरो हे !

भक्ति-व्योम-गंगा के तट पर
नीराजन जलते हैं,
चिदाकाश में पूर्ण चन्द्र बन
योगिराज बिचरो हे।

भीग रहे सब अमृत-वृष्टि में,
सबके भाग्य जगे हैं।
कृपा करो हे अवढर दानी,
मुझ पर देव, ढरो हे !

वैसे जीवनदानी कहां हैं ?

□

पाँच अप्रैल को सारे देश में आर्य समाज का स्थापना दिवस मनाया गया है। आर्य समाज के पिछले सौ वर्ष के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो निराशा का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। इस समय देश-विदेश में आर्य समाज का प्रचार जिस तेजी से हो रहा है, वह भी संतोष का विषय है। एक धार्मिक संस्था होते हुए भी, सौ वर्ष की इस अवधि में, क्या संख्या की दृष्टि से, क्या संगठन की दृष्टि से, क्या विस्तार की दृष्टि से—जितना प्रसार आर्य समाज का हुआ है, उतना शायद ही किसी अन्य संस्था का हुआ हो। सारे संसार में इस समय लगभग साढ़े चार हजार आर्य समाजें हैं और आर्य समाज के पंजीकृत सदस्यों की संख्या भी एक करोड़ के आसपास तक पहुंच गयी है।

निस्संदेह, यह तस्वीर का उज्ज्वल पहलू है, परन्तु यह भी सत्य है कि ज्यों-ज्यों हमारी संख्या बढ़ती गयी है, त्यों-त्यों हमारी गुणवत्ता में कमी आती गयी है। इस कमी को प्रकृति का स्वाभाविक नियम कह कर नहीं टाला जा सकता। 'क्वाण्टिटी' बढ़ने के साथ 'क्वालिटी' घटती चली जाय, यह कोई नियम नहीं है। इस को नियम बताना प्रकारान्तर से अपनी असमर्थता को प्रकट करना है। अच्छी कम्पनी वही मानी जाती है जिसमें 'प्रोडक्शन' बढ़ने के साथ निर्मित वस्तु के स्तर में कोई कमी न आवे।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश ने औद्योगिक विकास की दृष्टि से अभूतपूर्व प्रगति की है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इन्कार इस बात से भी नहीं किया जा सकता कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जितना अवमूल्यन जीवन-मूल्यों का हुआ है, उतना और किसी चीज का नहीं हुआ। चारों तरफ मंहगाई 'सुरसा के बदन' की तरह बढ़ती जा रही है, पर ईमानदारी, देशभक्ति, सच्चरित्रता की जिस का मूल्य निरन्तर गिरता जा रहा है। इसीलिए यह बात सही है कि देश में सबसे

बड़ा संकट गरीबी का नहीं है—जैसा कि राजनीतिज्ञ लोग दिनरात नारा लगाते हैं—बल्कि सबसे बड़ा संकट चरित्र का है।

अगर संकट गरीबी का होता, तो उसकी स्वाभाविक निष्पत्ति यह होती कि जो गरीब नहीं हैं, धन-सम्पन्न हैं, उनमें भ्रष्टाचार और बेईमानी के दर्शन नहीं होते। पर बात सर्वथा उल्टी है। आज भी जो गरीब हैं, उनमें जीवन-मूल्यों के प्रति आस्था मिलेगी, देशभक्ति और ईमानदारी के भी अधिकतम दर्शन तथाकथित अभावग्रस्त लोगों में ही मिलेंगे। पर जो गरीबों का शोषण करके अमीर बने हैं, या गरीबी हटाने का नारा लगाकर सत्ता में आए हैं, उन्होंने अपने जीवन के द्वारा जो आदर्श उपस्थित किए हैं, उन्हें किसी भी अवस्था में वरणीय नहीं कहा जा सकता।

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व देश में त्याग और तपस्या की होड़ थी, समाज का उच्च वर्ग इस बात में होड़ करता था कि किसकी आवश्यकताएं कम से कम हैं, कौन अपना जीवन-यापन कम से कम खर्च में कर सकता है। सर्वत्र उसी व्यक्ति का अधिकतम आदर होता था जो सबसे अधिक सादगी से जीवन बिताता था। इसे गांधी युग की देन कहा जा सकता है।

आज स्थिति सर्वथा विपरीत है। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में अपने चापलूसों का एक सुविधाभोगी वर्ग तैयार किया था, पर वह वर्ग बहुत सीमित था। स्वतंत्रता के बाद उस वर्ग में कई गुना वृद्धि हुई है। जीवन-स्तर को उन्नत करने की जो हवा चली, तो समर्थ और असमर्थ सब उस हवा में बह चले। कपड़ों, मकान, फर्नीचर, बैंकबैलेंस और ऐश्वर्य के अन्य साज-समान की बहुतायत के साथ तथाकथित जीवन-स्तर बेशक उन्नत होता गया, पर जीवन के जो शाश्वत मूल्य थे, वे निरंतर गिरते चले गए।

आज जीवन का हरेक क्षेत्र राजनीति से ओत प्रोत है और राजनीति में राजनीतिज्ञों ने समस्त अकरणीय कृत्यों को भी वैध मानने का प्रवाद चला रखा है। उसी का असर सारे देश पर है।

फिर आर्य समाज ही उस असर से कैसे अछूता रहता !

इसी स्थान पर आर्य समाज के उन पुरानी पीढ़ी के नेताओं की स्मृति हृदय को कचोटती हुई निकल जाती है जिन्होंने वैदिक धर्म के दीवाने बनकर, जीवन के समस्त सुखों और ऐश्वर्यों को लात मार दी और जीवनमूल्यों के ऐसे ऊंचे मानदण्ड

स्थापित किए कि 'स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' संसार के सब लोग उनसे अपने चरित्र की शिक्षा ले सकते थे। स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं० लेखराम और पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे व्यक्ति आर्य समाज की उन्हीं विभूतियों में से थे।

आज आर्य समाज में धनदानी हैं, श्रमदानी है, सेवादानी हैं, समयदानी भी हैं, पर महात्मा हंसराज जैसे जीवनदानी कहां हैं जो आर्यसमाज के लिए तिल-तिल करके जीवन भर जलते रहे और अपनी ज्योति से औरों को ज्योतित कर गए?

हंसराज गुणगान

—सत्यपाल 'पथिक'—

ज्ञान का प्रकाश जो विखेरा हंसराज ने
खो दिया अज्ञान का अन्धेरा हंसराज ने
घर दिया अविद्या के वन्धन को तोड़ के
जाग उठे लोग नींद गफ़लत की छोड़ के
चारों ओर कर दिया सवेरा हंसराज ने।

साधना व त्याग से विशालता को पा लिया
सौम्यता विनम्रता विवेक से वना लिया
हर दिलो-दिमाग़ में वसेरा हंसराज ने

दुखियों की झोलियों को खुशियों से भर दिया
खिल उठे दिलों के फूल क्या कमाल कर दिया
बेबसों के दुर्दिनों को फेरा हंसराज नें।

देश की तो शान था, वह आर्यों की जान था।
दुनियां में शूरवीर आदमी महान था।
"पथिक" विश्व कीर्ति से घेरा हंसराज ने।
खो दिया अज्ञान का...।

पताः—आर्य समाज फोर्ट
वम्बई

हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता

—डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्—

धर्म का लक्ष्य आत्मपूर्णता है, और जब तक यह लक्ष्य समाज नहीं स्वीकार कर लेता तब तक सभ्यता और मानवता की दृष्टि से यह संसार सुरक्षित नहीं है।

हिन्दू सभ्यता का पतन तब हुआ, जब उसने अपने अंतस् पर अज्ञान को आधिपत्य जमाने का अवसर दिया। अन्य कारणों के अतिरिक्त यूनान और रोम की सभ्यता के विनाश का एक कारण बर्बरता से आच्छदित होना भी था।

धर्मपरायण व्यक्ति को केवल स्वर्ग में दैवी सुख की लालसा न रखकर, इस धरा पर उस सुख की कामना करनी चाहिए और उसके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

हर व्यक्ति को अपना आत्मिक विकास करने का प्रयास करना चाहिए, ताकि वह आत्मा के राज्य का सही नागरिक बन सके।

यदि मानवता का चरम आदर्श, इस संसार में 'ईश्वर का राज्य' स्थापित करना स्वीकार कर लिया जाए तो उसका मेल 'जिसकी लाठी उसका भैंस' से नहीं बैठ सकता क्योंकि उसका लक्ष्य तो है सबल के हित-साधन के लिए निर्बल का बलिदान कर देना। दूसरे शब्दों में वह कहता है कि बलवान निर्बल की हत्या करता फिरे। सही विचार तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का है।

महा भारत में कहा गया है—

गुह्य ब्रह्मम् तद् इदम् वो ब्रवीमि
न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

—मैं तुम से पवित्र गुह्य कहे देता हूं कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। आदर्श लक्ष्य जाति अथवा राष्ट्रिकता का भेद भाव किए बिना मानव मात्र को बन्धु मानना है।

इतिहास के पास इस बात का स्पष्टीकरण उपलब्ध है कि संयोग अथवा परिस्थितियों ने मानवता को अगणित जातियों में कैसे विभाजित किया ओर सबकी पृथक्-पृथक् भाषा कैसे बनी, सबको कैसे जातिगत व्यक्तित्व प्राप्त हुआ और कैसे

सबके भौतिक रूप बने। हमें सभी जातियों को अलग अलग करके ईश्वर के इस कर्तृत्व को नष्ट करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जो आन्दोलन विभिन्न राष्ट्रों में घृणा का बीज बोते और दूसरे का गला काटने को प्रोत्साहित करते हैं, वे अधर्म से उद्भूत हैं।

जो लोग मानवमात्र को एक समझते हैं, वे किसी भी राष्ट्र पर आई विपत्ति को उन सब राष्ट्रों के लिए चुनौती मानते हैं, जो अच्छी हालत में हैं।

कुछ लोग तर्क करते है कि हमें न्याय की धुन में अपनी सभ्यता की बलि नहीं देनी चाहिए। पर इसका तो अर्थ यह हुआ कि वे लोग यह समझते हैं कि सत्य विचार से भी उनकी सुख-सुविधाओं पर आंच नहीं आने चाहिये। अन्याय पर आधारित सभ्यता कभी जीवित नहीं रह सकती।

यह एक अच्छा लक्षण है कि लोगों को अब उस धर्म में रुचि नहीं रह गयी है जो समाज सुधार न करना चाहता हो।

धर्म केवल एक व्यक्तिगत आध्यात्मिक तत्व ही नहीं, मानव मात्र पर दैवी शासन की प्रक्रिया है।

ईश्वर में आस्था रखने वाला मानवमात्र से प्रेम करता है। वह उन के कल्याण की कामना स्वयं अपने कल्याण के रूप में करता है।

वह न्याय को सभ्यता से ऊपर मानता है तथा सत्य को देश-प्रेम से उच्चतर स्थान देता है। गांधी ने कहा था—**"मैं भारत का बलिदान स्वतन्त्रता के लिए नहीं, सत्य के लिए कर दूंगा :**

मानवीय एकता के स्वप्न को वे महान आत्माएं साकार कर सकती हैं जिनकी धर्मपरायण आत्मा किसी भी भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक सीमा से प्रभावित नहीं होतीं। बल्कि जो न्याय सत्य स्वातंय, ईमानदारी, ईश्वर और मानवता के पुजारी हैं।

अधिक गहरे रूप में हम इस बात को इस तरह कह सकते हैं कि हमारे युग की सबसे बड़ी आवश्यकता सार्वभौम ईश्वर का विचार है।

शिक्षा : राष्ट्र का मेरुदण्ड

—श्रीमती महादेवी वर्मा—

मैं स्वयं एक जिज्ञासु विद्यार्थिनी हूं । जीवन की पुस्तक का अभी एक पृष्ठ भी मैं समाप्त नहीं कर पायी । वैसे मेरे विचार से मनुष्य चिन्तन और अनुभूति की चिर नवीन उद्भावनाओं की दृष्टि से आजीवन विद्याथ ही रहता है । इस स्थिति में परिवर्तन के लिए उसे बुद्धि और हृदय के द्वार ही बन्द कर लेने पड़ते हैं ।

भारत अपने भौगोलिक परिवेश में जितना विविध रूपात्मक है, सांस्कृतिक दृष्टि से वह उतना ही संश्लिष्ट और उसके सांस्कृतिक मूल्य जीवन के लिए मंगल-विधायक तथा आलोकवाही रहे हैं ।

जिन युगों तक इतिहास की किरणें नहीं पहुंच पातीं, उन युगों में भी भारत ने आचार्य कुलों को अपनी मूल्यात्मक उपलब्धियों का संरक्षक तथा अन्तेवासियों को उनका उत्तराधिकारी स्वीकार करके दोनों को समान महत्व दिया था ।

हमारे यहां जन्म से लेकर शिक्षा की समाप्ति तक व्यक्ति-निर्माण के लिए जो जटिल परन्तु गम्भीर संवेदनमयी व्यवस्था की शृंखला मिलती है, उसकी प्रत्येक कड़ी दीर्घ चिन्तन और परीक्षण का परिणाम है ।

प्राचीनकाल में दीक्षान्त अनुष्ठान एक ऐसी सन्धि-वेला थी, जिसमें शिष्य की परीक्षा समाप्त और गुरु की परीक्षा का आरम्भ होता था । स्नातक में कुलगुरु का ज्ञान ही नहीं, उसकी महिमा भी संक्रमित होती थी । इसी से स्नातक अपने आचार्य कुल से ही पहचाना जाता था । उनके अनेक कुलगुरु अपनी अत्यन्त क्रान्तिकारिणी जीवन दृष्टि के लिए प्रख्यात थे और उनकी शिष्य परम्परा समाज को गतिरुद्ध करने वाली रूढ़ियों को खण्ड-खण्ड करने का संकल्प लेकर कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करती थी ।

"सा विद्या या विमुक्तये"

गांधी जी ने गुजरात विद्यापीठ के लिए यही आदर्शवाक्य स्वीकार किया

था। विद्या की उपर्युक्त परिभाषा से अधिक प्रगतिशील परिभाषा खोज लेना कठिन होगा।

शिक्षा-संस्थानों में राष्ट्र बनता है, अतः आश्चर्य का विषय नहीं कि भारतीय मनीषा ने प्रत्येक अतीत युग में, शिक्षा के क्षेत्र को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा तथा तत्कालीन शासन-व्यवस्था के नियन्त्रण से उसे मुक्त रखा।

सहस्रों वर्ष पूर्व की शैक्षणिक उपलब्धियों का आज क्या उपयोग है, यह जिज्ञासा भी स्वाभाविक है। यह निर्विवाद सत्य है कि हम अतीत के युगों के जीवन और परिस्थितियों की आवृत्ति नहीं कर सकते। जब एक बीते क्षण, एक तीव्र संवेदन तक को लौटा देना सम्भव नहीं है, तब सुदूर अतीत में जीने का प्रश्न कल्पनातीत है।

परन्तु मानव के अतीत, वर्तमान और भावी संवेदनों को संभालने वाला समय तो अखण्ड ही रहता है।

विकास-क्रम में एक युग का मानव-समूह अपने पूर्वजों से जो उत्तराधिकार पाता है, वह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टियों से विविध और उपयोग के परिप्रेक्ष्य में चिर नूतन ही रहता है। जब अतीत युगों के दर्शन, कला, साहित्य आदि भिन्न वर्तमान युगीन परिस्थितियों में जीवन को समृद्ध कर सकते हैं, तब उन्हें जन्म देनेवाली दृष्टि और सामाजिक संस्थाओं का ज्ञान भी उपयोगी हो सकता है।

विकास-क्रम में यह सत्य और भी स्पष्ट हो जाता है। व्यापक अर्थ में विश्व का समस्त मानव-समूह एक परिवार है परन्तु विभिन्न प्राकृतिक परिवेशों में विकास के कारण वह वर्ण, आकृति, संस्कार, जीवन-पद्धति आदि की दृष्टि से अनेक जातियों में विभाजित हो गया है।

अपने विशेष भौगोलिक परिवेश, रागात्मक लगाव, संस्कार-क्रम से उत्पन्न जीवन-पद्धतियों की समानता आदि ही किसी मानव-समूह को राष्ट्र की संज्ञा से अभिषिक्त करते हैं। नदी-पर्वत-धरातल मात्र राष्ट्र नहीं बन जाते और न मानवों की विषम भीड़ ही राष्ट्र की गरिमा की अधिकारिणी हो जाती है।

वस्तुतः राष्ट्र शब्द से प्रबुद्ध, चेतन किन्तु स्वेच्छया एकताबद्ध मानव-समूह और उसका परिवेश दोनों का बोध होता है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या : — अथर्व से लेकर **"मुकुट शुभ्र हिमतुषार"** तक जो भाव-समुद्र लहरा रहा है, उसका तट बनाने की क्षमता किसी युग को प्राप्त नहीं हो सकी है।

अनेक बौद्धिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। वास्तव में किसी भी युग में जीवन अपने आपको धोई पोंछी स्लेट के समान नहीं प्रस्तुत करता। उसमें अनिवार्यतः अनेक विगत युगों के भौतिक मानसिक आदि संस्कारों के चिन्ह रहना स्वाभाविक है। जिन संस्कारों की रेखाओं में मानव-प्रगति का इतिहास निबद्ध है, उन्हें नवीन युग की परिस्थितियों से जोड़कर हम अपने युगान्तर दीर्घविकास की स्वर्णिम शृंखला में नवीन कड़ी जोड़ते हैं, तोड़ते नहीं।

माला में चाहे मोती हों, चाहें फूल, उन्हें संभालने का कार्य सूत्र ही करता है, जिसके टूटने पर बहुमूल्य और सुन्दर सब कुछ धूल में बिखर जाता है।
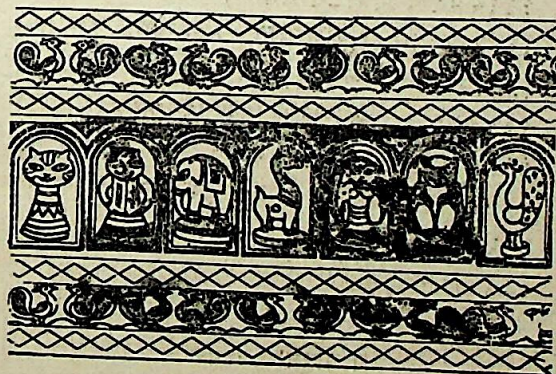
संक्षिप्त जीवन-झांकी

१८६४-१६ अप्रैल को श्री चुन्नीलाल भल्ला के यहाँ बजवाड़ा (होशियारपुर) में जन्म।

१८८०-मैट्रिक परीक्षा पास।

१८८२-'दि जनरेटर ऑफ आर्यावर्त' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक का श्रीगणेश।

१८८५-पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० पास।

१८८६-लाहौर में डी० ए० वी० स्कूल के प्रथम अवैतनिक मुख्याध्यापक।

१८८६-आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान निर्वाचित।

१८९३- आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना।

१८९५-'आर्य गजट' उर्दू साप्ताहिक और 'पंजाब केसरी' का सम्पादन।

१९०५-कांगड़ा में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता।

१९११-डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल पद से त्यागपत्र।

१९१४-धर्मपत्नी का देहान्त। ज्येष्ठ पुत्र श्री बलराज को लार्ड हार्डिंग बम केस में सात साल की सजा।

१९१८-पंजाब शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष।

१८९५-से १९२१-राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश छत्तीसगढ़, गढ़वाल, और कांगड़ा आदि स्थानों में पीड़ितों की सहायता।

१९२२-मलाबार के मोपलों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार का प्रतिकार।

१९२४-हिन्दू शुद्धि सभा के प्रधान।

१९२७-अखिल भारतीय आर्य महासम्मेलन दिल्ली के अध्यक्ष।

१९२८-लाहौर में महिला महाविद्यालय की स्थापना।

१९३३-अजमेर में ऋषि निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के प्रधान।

१९३४-३५-बिहार और क्वेटा के भूकम्प-पीड़ितों की सहायता।

१९३८-हरिद्वार में मोहनी आश्रम की स्थापना। १५ नवम्बर को रात को ग्यारह बजकर ५ मिनिट पर देहावसान।

संकलन कर्त्ता—
किशन चन्द्र रल्हन
आर्यसमाज, साउथ एक्सटेंशन-१
नई दिल्ली-४९

महात्मा हंसराज का बोध

—डा० इन्द्र मोहन सिंह—

था भारत जीवन धूमिल दिङ्मुख
थी भा-हीन संस्कृति धर्म गत सुख
उदित वेद उद्धारक ज्ञान सूर्य
धर दयानन्द रूप गौरव तूर्य
अब भौतिक देह अस्ताचल गमित
किन्तु चिर प्रकाश कीर्ण, भारत स्थित
धिक् यदि न उससे हुए स्नात प्राण
सक्रियता नहीं, रहा ध्यान ध्यान
निज देह गेह हित अविहित चिन्तन
वह उत्सर्ग पूर्ण जीवन क्षण-क्षण
हम उनके अनुयायी कहलाते
किन्तु कहो क्या यह हक रख पाते ?

हैं हमारे त्याग के अन्ध नयन
न चरण चिह्नों पर अर्पित जीवन
महत् कार्य रुक गये हैं अर्थ हित
कौन जो हो इस पथ पर समर्पित ?

विद्यालय जैसा पुनीत स्मारक
कर सके न स्थापित हम व्रत धारक
छट रहे निज कर से महत् कार्य
हम आर्य हैं या अब हुए अनार्य ?
न जिस विचार की बनी परम्परा
उसका जीवन अब मरा तब मरा
सदा रहे ऋषि आर्य, आर्य समाज प्रवर
यह संकल्प नित्य निखर निखर कर

मानस कुसुमों में सुगंधि भर भर
लाये त्यागी कर्म नर वर चिर
निःशुल्क आज मैं अध्यापन का
व्रत धार करता आजीवन का
ऋषि-विद्यालय चलता रहे स्वच्छ
अन्य चिन्ताएँ सकल अधम तुच्छ

पताः—डी० ए० वी० कालेज
कांगड़ा (हि० प्र०)
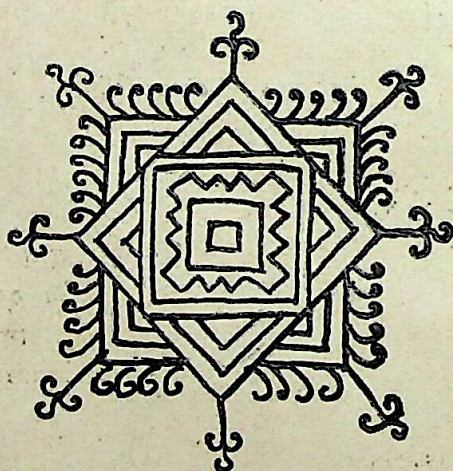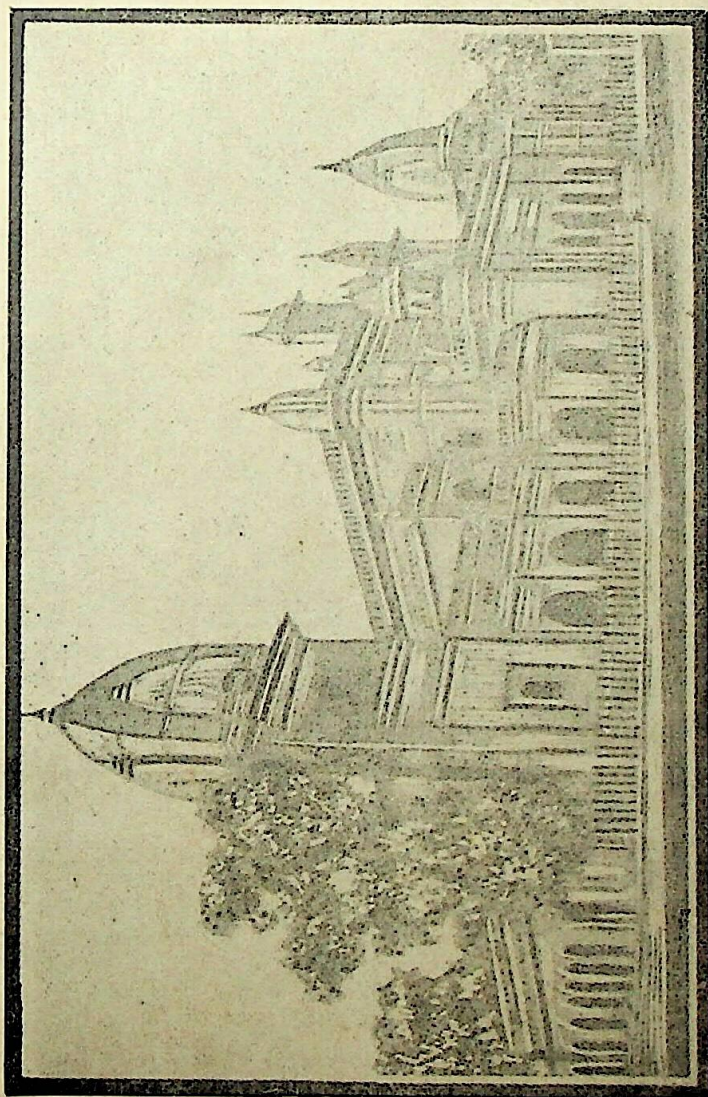
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज की भव्य इमारत
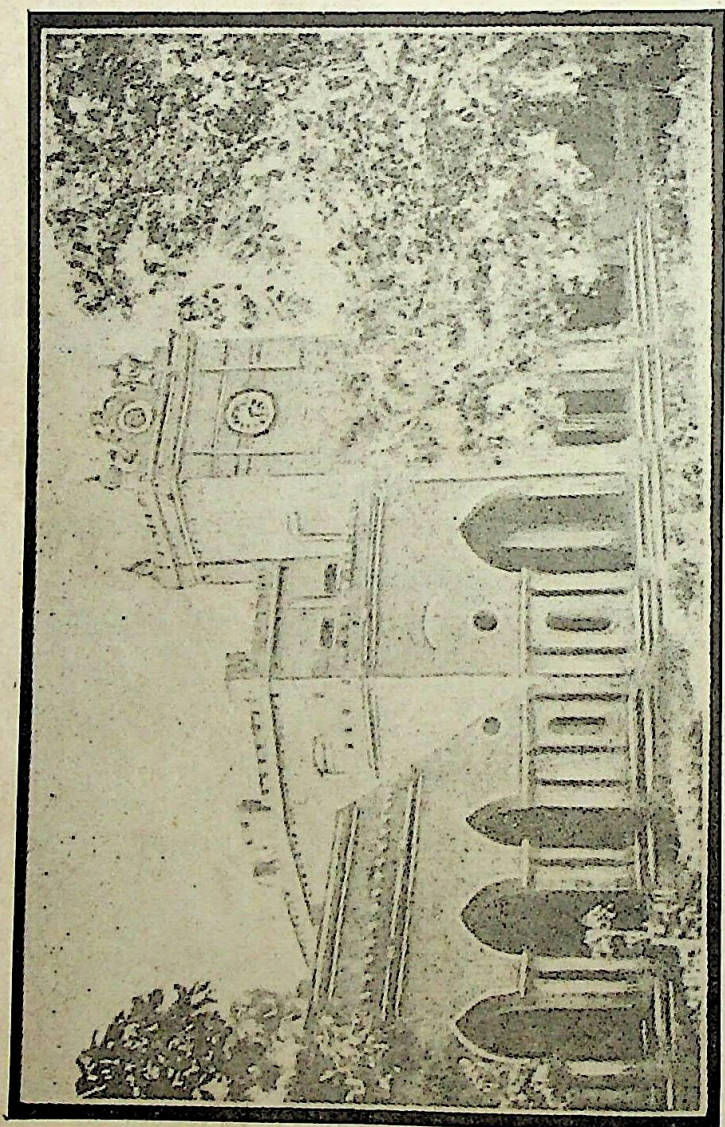
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज का साइंस ब्लाक
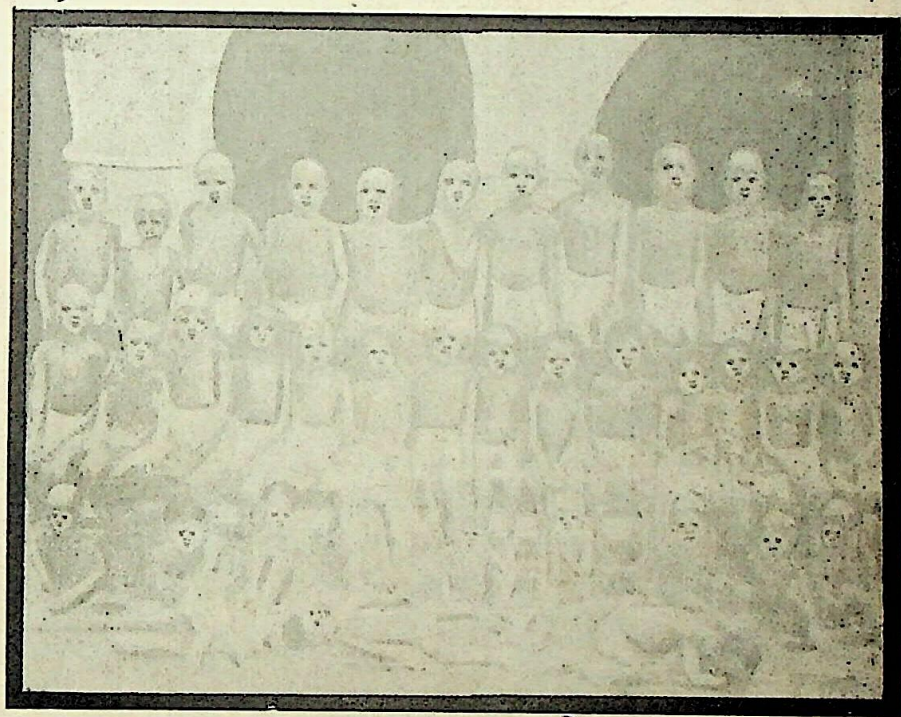
महात्मा हंसराज के नेतृत्व में आर्य समाज की ओर से जिन अकाल-पीड़ित अनाथ बच्चों की रक्षा की गई उनमें से कुछ बच्चे

डी० ए० वी० आन्दोलन के सूत्रधार-१

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय (सन् १९२८)

डी० ए० वी० आन्दोलन के सूत्रधार-२
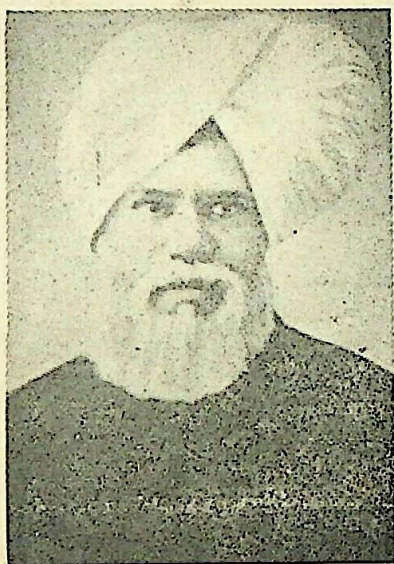
राय वहादुर लाल चन्द, मैनेजिंग कमेटी के प्रथम प्रधान
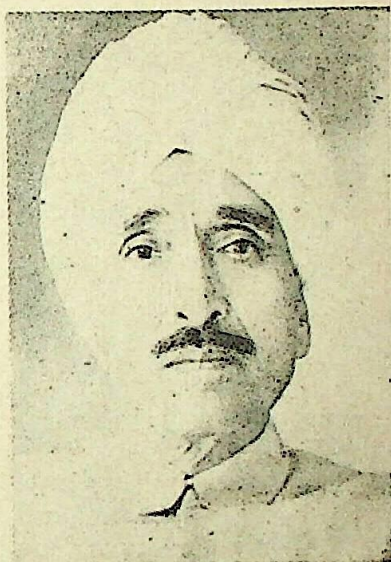
लाला साईंदास प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज, लाहौर
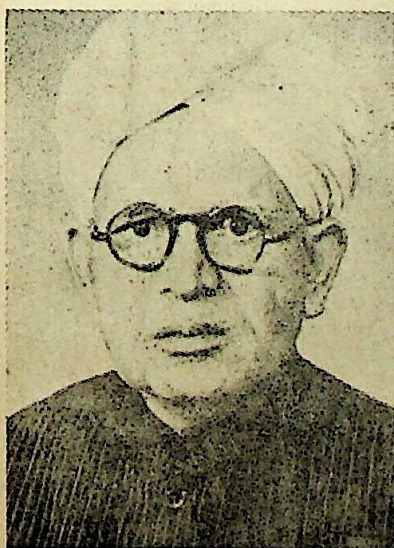
लाला मेहर चन्द प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज लाहौर

पं० मेहर चन्द, संस्थापक प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज जालन्धर

डी० ए० वी० आन्दोलन के सूत्रधार-३
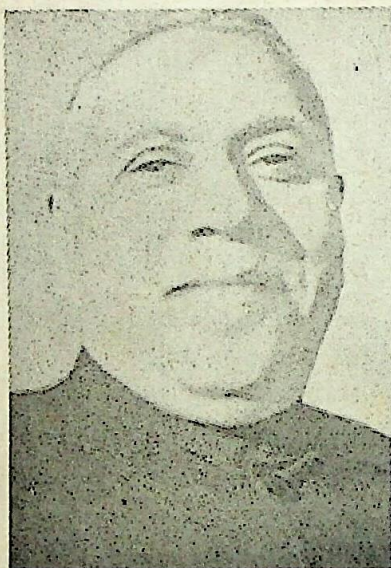
श्री मेहरचन्द महाजन, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, विभाजन के पश्चात् डी. ए. वी. आन्दोलन के पुर्नजीवन प्रदाता

प्रसिद्ध विधिवेत्ता न्यायाधीश बख्शी टेकचन्द
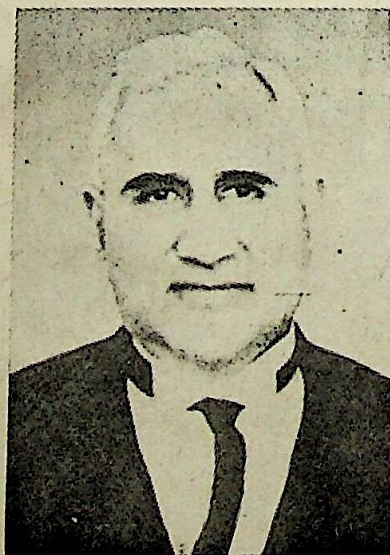
न्यायाधीश श्री जीवन लाल कपूर

प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री प्रि० दीवान चन्द
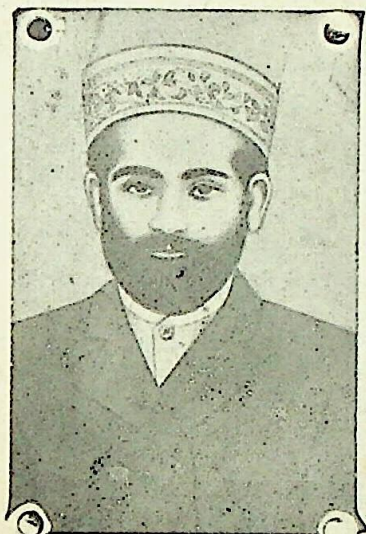
डी. ए. वी. आन्दोलन के सूत्रधार-४

प्रसिद्ध विद्वान् पं० गुरुदत्त
विद्यार्थी

महाशय कृष्ण, पंजाव में
आर्यसमाज के संगठनकर्त्ता
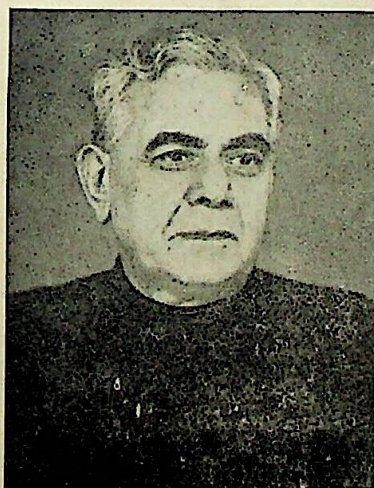
लाला सूरजभान

श्री गोवर्धन लाल दत्त

डी. ए. वी आन्दोलन के सूत्रधार-५
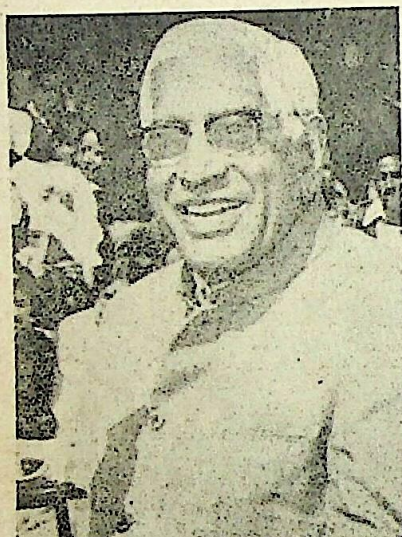
प्रो० वेद व्यास
प्रधान डी. ए. वी.
कालिज मैनेंजिंग कमेटी
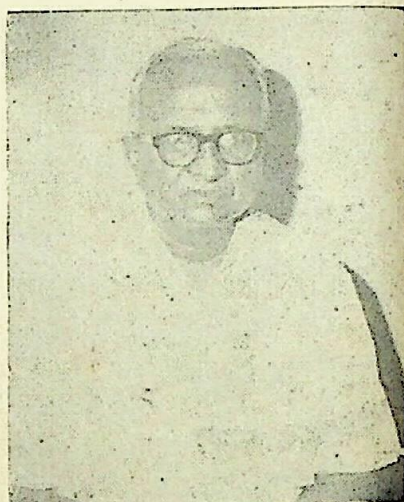
प्रि० शान्ति नारायण
उपप्रधान डी. ए. वी.
मैनेंजिंग कमेटी
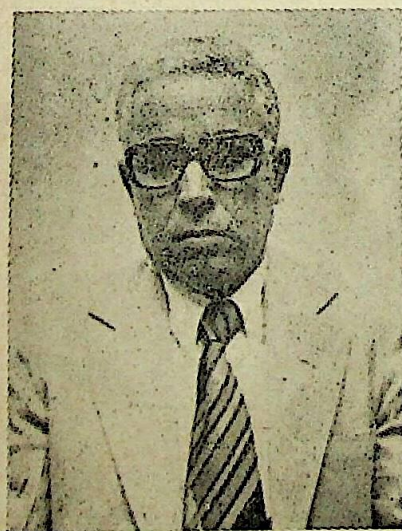
श्री दरबारीलाल
डी. ए. वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री
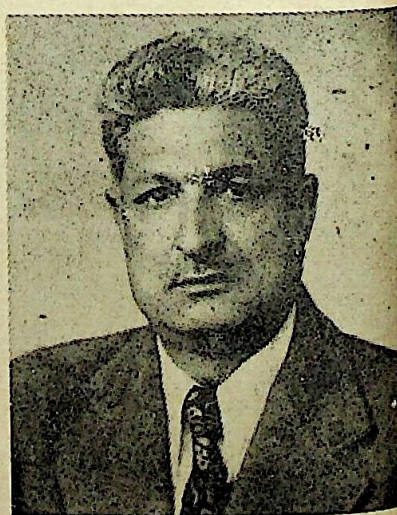
श्री रामनाथ सहगल
मंत्री आर्य प्रादेशिक

त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जीका यह ऐतिहासिक भाषणआर्य-समाज को जिस व्यापक परिप्रेक्षा में प्रस्तुत करता है, वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक है जितना उस समय रहा होगा जब यह भाषण दिया गया था। इसमें उनकी विवेचनात्मक प्रतिभा और ऋषि के मिशन के प्रति निष्ठा एक साथ प्रकट होती है। इसमें उनके मुख से निकले शब्द नहीं बोलते, साक्षात् उनका जीवन बोलता है।

आर्य-समाज

डी. ए. वी. आन्दोलन के संस्थापक त्याग मूर्ति महात्मा हंसराज जी
अनुवादक : प्रो० वेदप्रकाश मल्होत्रा डी. ए. वी. कालेज, जालन्धर

आज मैं आर्यसमाज के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। मैं आशा रखता हूं कि आप इसको बड़े प्रेम से सुनेंगे। आर्य समाज एक इस प्रकार का समुदाय है जो अपने आपको हिन्दू समाज से अलग नहीं समझता। इसलिये आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है, वह वास्तव में हमारी जाति के साथ सम्बन्ध रखता है। इसलिए जिन लोगों का सम्बन्ध आर्य समाज के साथ पूर्णतया नहीं है उनको भी इस विषय में रुचि होगी कि आर्य समाज की क्या स्थिति है।

कल लाला देवीचन्द जी ने, जो हमारी समाज के असाधारण कार्यकर्त्ताओं में से हैं, आर्यसमाज का ज़िकर करते हुए, एक प्रश्न रखा था कि पादरी फारकुहार ने यह भविष्य-वाणी की है कि आर्य-समाज थोड़े दिन का मेहमान है। मेरे भाई ने इसका खण्डन बड़ी योग्यता से किया है। मैं भी आज उसी सम्बन्ध में प्रकाश डालना चाहता हूं। आर्यसमाज को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है कि हम उस दशा को अनुभव करें जो स्वामी जी से पहले विद्यमान थी। आज की परिस्थिति को और समय की गति को देखकर हम अपने मन में वह चित्र नहीं ला सकते जब कि स्वामी जी ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

जाति का अर्ध भाग बेकार

यदि आप अपनी जाति के आधे भाग पर दृष्टि-पात करें तो आपको पता चलेगा कि यह बिल्कुल बेकार था। स्त्रियों की अधोगति और उनके साथ जो

व्यवहार उस समय था, वह बहुत ही शोचनीय है।

कोई समय था जब स्त्रियां हर प्रकार की विद्या पढ़ती थीं। बड़ी-२ सभाओं में उनका मान होता था। मनु महाराज स्त्री को लक्ष्मी की संज्ञा देते हैं। मानो उस समय लक्ष्मी और स्त्री में कोई भेद न होता था। परन्तु फिर वह समय भी आया जब स्त्रियों की अवस्था इतनी गिर गई कि यदि किसी के घर कन्या जन्म लेती तो माता पिता रोना प्रारम्भ कर देते। उनकी निर्दयी मातायें अफीम खिलाकर और मुंह में कपड़ा ठूंस कर कन्याओं को मार डालती थीं। जब इन कन्याओं की आयु बढ़ जाती थी तो उस समय भी यही समझा जाता था कि यह रोग कहां से आ गया है। यदि कन्या विधवा हो जाती थी तो या तो उसे दुर्भाग्य का कारण समझा जाता था या अग्नि की भेंट कर दिया जाता था। आप देखें, यह था व्यवहार जाति के आधे भाग के साथ जो स्वामी जी के आने से पहले हम करते थे। सारांश यह कि जाति का आधा भाग बड़े संकट में ग्रस्त था।

जाति के एक और भाग की शोचनीय अवस्था

इस भाग को छोड़कर अब बाकी के आधे में से इस अंश की ओर दृष्टि पात करें जिसको आज हम अछूत, अन्त्यज और नीच शब्दों से पुकारते हैं। उन अछूतों और अन्त्यजों की यह दशा थी कि कोई भी हिन्दू उनको अपने आंगन में बैठने की अनुमति नहीं देता था। परन्तु यदि वही अछूत मुसलमान या ईसाई बनकर आ जाता तो उससे हाथ मिलाकर सम्मान पूर्वक बिठाया जाता। जब तक वह राम और कृष्ण का नाम स्मरण करने वाला रहा, जब तक वह वेदों का अनुयायी रहा, तब तक उसकी मजाल न थी कि हमारे फर्श पर आकर बैठ सके। शूद्रों को आज्ञा नहीं थी कि वेद मंत्रों का श्रवण कर सकें। यदि सुन लें तो यम-स्मृति में लिखा है कि इन के कान में सिक्का डाल दिया जाये और यदि बोले, जिह्वा काट ली जाये। यह था हमारा व्यवहार इस भाग के साथ। यदि अब तक छोटी जातियां हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध रखती चली आ रही हैं तो यह हमारी ओर से नहीं, अपितु इन जातियों की सज्जनता के कारण है। हमारी दुर्जनता में तो कोई शक है ही नहीं।

शेष भाग भी अन्धकार

अब जरा शेष ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों को देखें। ब्राह्मण अपने वास्तविक कार्य को छोड़ बैठे थे। विद्या से हाथ धो बैठे थे। कर्म-धर्म से अलग थे। विद्या-प्रचार जो उनका कर्तव्य था, वह उनमें विद्यमान न था। ब्राह्मण-धर्म और संस्कृत का केन्द्र काशी है। वही विद्या का मस्तिष्क समझा जाता था और अब भी

समझा जाता है। परन्तु काशी की अवस्था भी विगड़ चुकी थी। पण्डित गण न्याय और व्याकरण के सूत्रों को घोटने के सिवाय और कुछ नहीं करते थे। उनसे कुछ लाभ भी नहीं उठाते थे। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य भी अपने धर्म से गिर चुके थे।

इस समय सहस्रों की गिनती में आगा खानी पंजाव में विद्यमान हैं जो आगा खान को अपना पूज्य समझते हैं और राम और कृष्ण की परवाह नहीं करते। यदि ये लोग विद्या के प्रकाश से आलोकित होते तो इस प्रकार पथ-भ्रष्टता में क्यों फंसते ?

हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में इतिहास क्या कहता है ?

मैं ऐतिहासिक रूप में कहना चाहता हूं कि उस समय के हिन्दू-धर्म ने किसी प्रकार भी जाति को लाभान्वित नहीं किया। संसार में सदा यह हुआ है कि जब कभी जातियों पर संकट आया है तो धर्म ने बड़ी सहायता की है। और जब जातियां उभरने लगी हैं तो जातियों ने उस समय भी धर्म के माध्यम से बड़ी प्रेरणा प्राप्त की है।

दक्षिण महाराष्ट्र में एक आन्दोलन ने जन्म लिया। वह राष्ट्रीय आन्दोलन था। धर्म इसकी बुनियाद में नहीं था। सिवाय इसके कि शिवाजी ने कुछ कथाओं का प्रचार किया था। वह आन्दोलन देश में व्याप्त हुआ, पर आर्यावर्त के धर्म पर उसका प्रभाव न हुआ।

पंजाव में सिक्खों का आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन था। कुछ समय तक यह धर्म फैलता रहा, लेकिन फिर रुक गया और अव सिक्खों की संख्या तीस लाख से अधिक नहीं है। ऐसे ही कबीर-पन्थ और चैतन्य-पन्थ हैं। इन पन्थों और आन्दोलनों को यदि ध्यान से देखें तो किसी भी पन्थ और आन्दोलन ने यह घोषणा नहीं की कि मैं सारे आर्यवर्त में फैल कर एक धर्म बन जाऊं।

इन पन्थों के इतिहास से पता चलता है कि पन्थ निकले और फैले, उन्होंने मानव जीवन को कुछ ऊंचा भी किया, भक्ति की तरंग चलाई, परन्तु इसमें भी शक नहीं कि किसी पन्थ ने इस बात की इच्छा या घोषणा नहीं की कि वह सारे देश में फैल जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि वह कुछ काल में हिन्दू-धर्म का एक अंश बन गये और सारे धार्मिक जगत् पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा।

हिन्दू-धर्म की बनावट

हिन्दू धर्म की बनावट इस प्रकार की है कि इसने सदा दूसरों को अपने अन्दर समन्वित करने का यत्न किया है। उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि प्राचीन परम्परा से अलग एक भिन्न मत है। हिन्दू धर्म उसके विरुद्ध नहीं बोला और स्वयं भी वैसा ही मानना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में वह अलग मत हिन्दू-धर्म का एक अंश बन गया।

आजकल हिन्दुओं में शीतला की पूजा जारी है। इसके अतिरिक्त अनेक दूसरे देवी-देवता भी हैं। इनमें से बहुत से देवी-देवता ऐसे हैं जिनका उल्लेख पुराणों में भी नहीं आता। और कई देवताओं का उल्लेख कुछ पुराणों में आता है, कुछ में नहीं आता। शीतला की पूजा की रीति आर्य-लोगों की नहीं है। अपितु यह उन्होंने ज्ञान-हीन जातियों से ली है। हिन्दुओं ने इसे दूर नहीं किया, अपितु इसे भी अपने धर्म का अंश बना लिया।

इस प्रकार निस्सन्देह हिन्दुओं ने अपनी हाजमे की शक्ति को प्रगट किया लेकिन इसने उस विष को दूर नहीं किया जो कि लोगों में पहले विद्यमान था। प्रयत्न केवल यह रहा कि जिस प्रकार के भी आदमी मिलें वैसे ही ले लिये जायें। इस प्रकार करोड़ों की संख्या वाले हिन्दू-धर्म में कोई विशेष या सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है।

जनगणना के समय प्रश्न उठा था—हिन्दू कौन है ? इस विषय पर बहुत वाद-विवाद हुआ, परन्तु कोई निश्चय न हो सका। यदि वेदों को हिन्दू-धर्म का आधार समझें, तो लाखों हिन्दू ऐसे हैं जो वेद नहीं मानते। ऐसे ही सहस्रों हिन्दू गोमांस भी खाते हैं। इसलिये गौ के सम्मान करने का सिद्धांत भी हिन्दुओं का सांझा सिद्धांत नहीं। इसी प्रकार कई विष्णु को, कई महेश को और कई काली को मानते हैं। लेकिन ये सब हिन्दू हैं। परिणामस्वरूप जनगणना के कमिश्नर को निश्चय करना पड़ा कि हिन्दू वही है जो अपने आपको हिन्दू कहता है, चाहे उसका विश्वास कुछ भी क्यों न हो।

हिन्दू-धर्म ने केवल बाहरी रीति रिवाजों की परवाह की। जिसका परिणाम यह हुआ कि जिस बात ने शक्ति उत्पन्न की थी वह कमजोरी का कारण बन गई।

भारत के इतिहास में कोई अवसर ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता जब हिन्दू-धर्म पूरे तौर पर समस्त हिन्दुओं के लिए शरण सिद्ध हुआ हो। हां, यह हुआ है कि एक स्थान पर हिन्दू धर्म के लिए एक वर्ग खड़ा हो गया, दूसरे स्थान पर दूसरा। परन्तु

सम्मिलित तौर पर सब हिन्दुत्त्व के नाम पर कभी एक नहीं हुए। हिन्दू-धर्म एक बिखरी हुई शक्ति है जिसमें बहुत से सुराख हैं।

आप उत्सवों को देखें। दक्षिण में कई जगह विजय दशमी का पर्व नहीं मनाया जाता। और उत्तर में गणपति उत्सव नहीं मनाया जाता। भाव यह है कि लोगों के अन्दर एकता की भावना नहीं रही।

क्या हिन्दू शास्त्र भी यही सिखलाते हैं ?

प्रश्न यह है कि क्या हिन्दू शास्त्रों की बनावट भी यही सिखलाती है कि हम एकता में कभी आबद्ध न हों। अथवा एकता के सूत्र को हम अब भूल गये हैं। यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उत्पन्न होता है और इसी का उत्तर देने के लिए ऋषि ने जन्म लिया।

इसके साथ एक और बात जोड़ लें कि जहां हिन्दू धर्म फटा हुआ था, अन्दर से खोखला हो रहा था, वहां बाहर से आक्रमण शुरू हो गये। ईसाई मिश्ननियों ने बाकायदा मिशन जारी किये। लाखों रुपये उनकी पुश्त पर थे। सहस्रों आदमी उनका काम करने वाले थे और जोश से भरे हुए थे। उन्होंने हिन्दुओं के अन्दर काम प्रारम्भ किया।

एक और शोचनीय बात यह थी हिन्दू धर्म के अन्दर स्वाभिमान का विचार लुप्त हो गया था। हां इतना आत्म-सम्मान तो था कि एक ऊंची जाति का हिन्दू अभिमान से कहता था : मैंने हिन्दू के घर में जन्म लिया है। परन्तु शिक्षित के अन्दर यह आत्म-सम्मान नष्ट होता जाता था। वे कहते थे कि हिन्दू धर्म गल्तियों का समूह है। वे पश्चिमी साहित्य पढ़ते थेऔर अपने धर्म से विमुख होते जाते थे।

ऋषि ठीक अवसर पर आये

हिन्दू जाति की जब ऐसी भयानक स्थिति हो चुकी थी, स्त्रियां विवश थीं, शूद्रों को धक्के दिये जाते थे, पादरियों के आक्रमण हो रहे थे, पढ़े लिखे वर्ग के अन्दर आत्म-सम्मान उड़ चुका था, तब ऐसे समय आवश्यकता थी एक रक्षक की, जो आये और इस स्थिति में सुधार कर दे।

भगवान कृष्ण ने गीता में लिखा है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है तो इसकी रक्षा करने वाला उत्पन्न होता है और ईश्वर जिस समाज को जीवित रखना चाहता है उसमें ऐसे महापुरुष उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रातः काल एक टीले पर चढ़कर नगर की ओर दृष्टिपात करें। धुन्ध जो दूर-२ तक फैली हुई है, नगर के मीनारों को भी देखने नहीं देती। परन्तु जब सूरज जरा ऊपर चढ़ता है तो यह अदृश्य हो जाती है, सूरज की किरणें नगर पर पड़ती हैं तो मन्दिर भी दिखाई देते हैं और उनके कलश भी।

महापुरुष भी सूरज की तरह ही होते हैं जो आते ही अन्धकार का दूर कर देते हैं। मेरा यह दावा है कि ऋषि दयानन्द बिल्कुल ठीक समय पर प्रकट हुए और प्रकट होकर उन्होंने समाज का बोझ अपने कंधे पर ले लिया।

इस समय तक हमारी जाति का एक पड़ाव था। लेकिन अब दूसरा पड़ाव प्रारम्भ होता है। जब ऋषि दयानन्द को परमात्मा ने कर्तव्य सौंपा तो उन्होंने सर्व-प्रथम यह किया कि पाठशालायें स्थापित कीं ताकि उनके माध्यम से कार्यकर्ता तैयार किये जा सकें। परन्तु यह तरीका जल्दी छोड़ना पड़ा। मैं यह नहीं कहता कि पाठशालाओं से आदमी निकल नहीं सकते। मेरा विश्वास है कि आदमी हर स्थान से निकल सकते हैं। लेकिन हर बात का अवसर होता है। इस समय वह नैतिक तथा धार्मिक वातावरण उपलब्ध न था जिसमें ऐसे उपदेशकों का पालन-पोषण हो सके।

आर्य समाज की विशेषता

इसके उपरान्त स्वामी जी ने आर्य समाजें स्थापित कीं। श्री फर्कुहार लिखता है कि यह आर्य समाजें थोड़े दिनों की मेहमान हैं। प्रायः और लोग भी लिखते हैं कि आर्यसमाज पुरानी शराब को नई बोतलों में डालता है। समाज के द्वेषी ऐसी ही बातें करते हैं। हमारे कई भाई भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं। लेकिन देखो कि क्या आर्यसमाज की बुनियाद कमजोर है? इसका प्रथम नियम ही देखें जो एक ईश्वर पर विश्वास करना सिखलाता है और फिर ईश्वर के गुण वर्णन करता है और बतलाता है कि ऐसे ही परमात्मा की उपासना और पूजा करनी चाहिए।

आर्यसमाज का यह नियम बड़ा ही शक्तिशाली है। इस नियम को रखते हुए आर्य समाज कभी टूट नहीं सकता। हां, जिनके हृदय के अन्दर परामात्मा के लिये विश्वास और भक्ति नहीं है, वे समाज के प्रशंसक नहीं हो सकते क्योंकि वे इस नियम को जान ही नहीं सकते।

दूसरी बात आर्यसमाज यह बतलाता है कि वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। है। वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है यदि इसके साथ पहले सिद्धांत को मिला लें कि जहां सब सत्य विद्याओं का मूल परमेश्वर को ही बतलाया गया है, तो इससे स्पष्ट होता है कि वेद अपौरुषेय हैं और ईश्वर की वाणी हैं।

तीसरी बात यदि नियमों को मिला लिया जाये और फिर देखा जाये तो वे बतलाते हैं कि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करो। अपनी ही उन्नति में उन्नति न समझो बल्कि दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझो, और संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करो। इन नियमों के अन्दर चौथी बात यह दिखाई गयी है कि जनता के अन्दर विशेष भावना पैदा की जाए। इसलिए जहाँ एक आर्य समाजी अपना पेट भरता है वहां वह यह अपना कर्त्तव्य समझता है कि मैं दूसरों को आराम पहुंचाऊं। आर्य समाज इस भाव को सदस्यों के अन्दर डालता है। हां यह भाव किसी में 'कम' किसी में 'अधिक' है। स्वामी जी ने इन चारों बातों को प्रकाशित किया। ओर इन नियमों को लेकर स्वामी दयानन्द बाहर निकले।

प्राय: लोग कहते हैं कि आर्य समाज का कोई सिद्धान्त नहीं। लेकिन यह बात बिल्कुल गलत है। आर्य समाज का अस्तित्व स्वयं इस बात की दलील है कि यह सिद्धान्तों पर आधारित है। स्वामी दयानन्द ने विशेष सिद्धान्तों का प्रचार किया है और उन्हीं को लेकर लोगों से शास्त्रार्थ किये।

आर्यसमाज का पहला पड़ाव

आर्य समाज का पहला पड़ाव तब से प्रारम्भ होता है जब बम्बई में आर्य-समाज की स्थापना की गई। परन्तु आर्य समाज का जीवन इससे बहुत पहले से प्रारम्भ होता है। स्वामी जी ने आर्य समाज स्थापित करने से पूर्व इसे इस रूप में लाने के लिए बहुत काम किया। लार्ड कर्जन से भी पहले लार्ड लिटन के काल में १८७७ ईसवी में दिल्ली दरबार हुआ था। जब महारानी विक्टोरिया के राज की घोषणा की गई थी उस समय सारे राजे, महाराजे एकत्रित हुए थे। सारी भौतिक ताकतें उपस्थित थीं। क्या ऋषि यह सहन कर सकते थे, कि जहां राजराजेश्वरी के राज्य की घोषणा हो, वह वेदों का नाद न हो? क्या वे हमारी तरह कमजोर दिल थे? इस अवसर पर उन्होंने वहां वैदिक धर्म का प्रचार किया और विभिन्न मता-वलम्बियों को बुलाकर उनके सामने आर्य समाज की विचार धारा रखी।

१८७७ ई० से १८८३ ई० तक; जबकि स्वामी जी का देहान्त हुआ, आर्य-समाज के जीवन का पहला पड़ाव है। आप उसके अन्दर क्या देखते हैं। स्वामी जी का प्रचार जहां होता था, लोग पत्थर और ईटें मारते थे, लेकिन भ्रमों का खण्डन जोर से होता था, लोगों के अन्दर सच्चे विचारों का प्रचार किया जाता था। स्वामी जी एक स्थान पर जाते थे वहां पांच सात आदमी उनके विचारों वाले बन जाते थे

और फिर वे आगे प्रचार करने चले जाते थे। ऋषि की बात मानने वालों को बुरा-भला कहा जाता था, बिरादरी से निकाल दिया जाता था, परन्तु आर्य समाज सच्चे ब्राह्मणों की तरह कार्य करता चला जाता था।

मुझे वे दृश्य स्मरण हैं जब हम आर्य समाज में इकट्ठे होते थे। बरसों अष्टाध्यायी के अध्ययन में व्यय कर देते थे क्योंकि हमें बतलाया जाता था कि इसी से हमारी उन्नति होगी।

आप पण्डित गुरुदत्त को देखें। उन्होंने अष्टाध्यायी पढ़ी और दूसरों को पढ़ाई। यह एक स्वर्णिम शुभ समय था। लोग दफ्तरों में काम करते थे और शेष समय में संस्कृत भी पढ़ते थे और समाज का काम भी करते थे। आर्य समाज ने इस प्रकार दूसरों की भलाई की भावना पहले से ही पैदा की थी।

आर्य समाज के जीवन का दूसरा पड़ाव

जब स्वामी जी जा देहान्त हो गया तो लोगों ने इसी पब्लिक स्पिरिट से काम किया जो उन्हें सिखलाई गई थी। सब आर्य समाजों ने विचार के पश्चात् निर्णय किया कि दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना की जाए। अब निर्माणात्मक कार्य प्रारम्भ हुआ और परोपकार का काम होने लगा। दयानन्द कालेज के जो उद्देश्य पहले थे, वही अब भी हैं। हिन्दी तथा संस्कृत का प्रचार, वैदिक धर्म का प्रचार, अंग्रेजी विद्या और विज्ञान से परिचय, औद्योगिक विद्या का प्रचार, ये सारे उद्देश्य थे। और हे मेरे युवा भाईयो, देखो कि ये किस प्रकार पूरे हो रहे हैं। मैं प्रायः देखता हूं कि कई लोग दयानन्द कालेज में अपने धर्म और विश्वास को कमजोर कर देते हैं। लेकिन मैं बतलाना चाहता हूं कि दयानन्द कालेज की त्रुटियों से जितना मैं परिचित हूं, आप शायद उतने नहीं। लेकिन विश्वास कीजिए कि जहां हम उन त्रुटियों से परिचित हैं, वहां उन त्रुटियों को प्रति वर्ष दूर भी कर रहे हैं। आवश्यकता है कि आप शक्ति और विश्वास को दृढ़ रखें।

दयानन्द कालेज का प्रभाव

आप दयानन्द कालेज के प्रभाव को देखें। अन्धे न बनें। आप देखें कि दयानन्द कालेज शिक्षा का बड़ा केन्द्र है, जहां कालेज विभाग में एक सहस्र से अधिक छात्र पढ़ते हैं वहां स्कूल में १७०० से अधिक पढ़ते हैं। गवर्नमेण्ट और मिशन कालजों में लड़कों को दुत्कारा जाता है। क्या दयानन्द कालेज के द्वार भी इसी प्रकार बन्द कर दिये जायें? यदि कभी विवश होकर द्वार बन्द करने पड़ते हैं तो मत समझो कि इस कालेज के प्रिंसिपल को दुख और क्लेश नहीं होता। उनका हृदय

बड़ा दुखित होता है । परन्तु यह हमारा दोष नहीं है । इसमें विश्वविद्यालय का भी दोष है और इस नीति का भी जो व्यय बढ़ाकर शिक्षा दिलाना चाहती है । मैं तो उन व्यक्तियों में से हूं जो यह समझते हैं कि एक पीपल के नीचे बैंचों और दरियों के बगैर घास के ऊपर बैठकर लड़कों को अपनी शिक्षा दी जा सकती है । मैं कहता हूं कि अच्छे आदमी बनाने के लिए सजावट की आवश्ययकता नहीं । परन्तु जब यह समझा जाए कि जब तक विशेष प्रकार के सामान पैदा न किए जाएं, विशेष प्रकार के चार्ट और चित्र न लगे हों, पीठ वाले बैंच न हो शिक्षा नहीं हो, सकती । जब प्रिंसिपल की गोद में और लड़के समा ही न सकें तो क्या किया जा सकता है ? यदि इस समय कालेज का द्वार वन्द होता है तो यह बात क्षमा-योग्य है । इसमें कुछ दोष आपका भी है । यदि आप चाहते हैं कि यह गोद अधिक विस्तृत हो और शीघ्र पूर्ण न हो जाया करे तो आप इसके लिए साजोसामान उत्पन करें ।

शिकायतों को भरमार

शिकायतें की जाती हैं कि दयानन्द कालेज के विद्यार्थियों में आर्य समाज का प्रेम नहीं है और वे आर्य समाज का प्रचार नहीं करते लेकिन याद रक्खो, दयानन्द कालेज ने आर्य समाज के जलवायु को इतना ताजा किया है, मैं दावे से कह सकता हूं कि इससे बढ़कर किसी भी संस्था का प्रभाव नहीं है ।

दयानन्द कालेज के विद्यार्थी सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ और सुनकर बाहर निकलते हैं और जहां जाते हैं, आर्य समाज को फैलाते हैं । निस्सन्देह इनमें से कुछ दब जाते हैं, लेकिन अधिक संख्या आर्य समाज का प्रचार करने वालों की होती है । फिर भी आप देखें उस सूची को जिसमें आर्य समाज के कार्यकर्ताओं के नाम हैं, तो उसमें आप इस कालेज के सपूत सबसे अधिक पायेंगे । दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । लाला साईंदास जी एम० ए०, लाला दीवान चन्द एम० ए०, लाला देवी चन्द्र जी एम० ए० और पण्डित मेहर चन्द जी और लाला मेहर चन्द जी को देखें । क्या दयानन्द कालेज ने उन पर कुछ प्रभाव नहीं डाला ?

इंजील का पृष्ठ खराब करने पर निष्कासित

कोई काल था जब एक मिशनरी संस्था में पढ़ने वाले एक छात्र को इसलिए कालेज से निष्कासित कर दिया गया था कि उसने इंजील का एक पन्ना मोड़ दिया था । लेकिन वह बात अब नहीं हो सकती । क्यों ? दयानन्द कालेज विद्यमान है । दयानन्द कालेज का अप्रत्यक्ष लाभ है । खैर इस काल में आर्य समाज का निर्माण

हुआ। स्कूल बने, संस्थायें स्थापित हुईं और हो रही हैं। दूसरी ओर देखें। आर्य-समाज के अन्दर मांग उत्पन्न हुई और लाला देव राज और उनके साथियों ने कन्या महाविद्यालय स्थापित कर दिया। और लाला मुन्शी राम जी ने गुरुकुल की नींव रक्खी। ऐसे ही फिरोज पुर में अनाथालय स्थापित किया गया। सारांश कि यह काल निर्माण का कार्य था। इसी प्रकार स्वर्गीय लाला साईंदास जी के दर्शन जिन्हों ने किए हैं, जिन्होंने राय बहादुर लाल चन्द के दर्शन किए हैं, जिन्होंने कालेज की स्थापना की, और जिन्होंने पण्डित गुरुदत्त की मोहिनी मूर्ति देखी है, वे जानते हैं कि किस प्रकार आर्य समाज के लिए कुर्बानियां की गईं। आपने लाला लाजपत राय के व्याख्यानों को सुना। उन्होंने किस प्रकार उदारता और सहृदयता से सेवा की? इन महानुभावों ने कितना कार्य किया है? ऐसे ही कई नौजवान हैं जो इस समय आर्य समाज के कार्य में लगे हैं। मैं उनका नाम लेना नहीं चाहता।

इन संस्थाओं के स्थापित होने से ईसाईयों का काम बहुत सीमा तक शिक्षित समुदाय से उठ गया है। एक बात और है। जहां हमारे बच्चे बी. ए. और एम. ए. हो गए और उन्होंने यूरोपियन लेखकों की दो तीन पुस्तकें पढ़ीं, तो समझ लेते हैं कि हमारी बुद्धि स्वामी दयानन्द से बढ़कर है। यह बड़ी भयानक बात है। यूरोपीयन आलोचक कहते हैं कि हमारी तर्क-सरणि के सामने वैदिक धर्म नहीं ठहर सकता।। हम कहते हैं कि हमारे पूर्वज ऋषि थे। लेकिन यूरोपियन लेखक कहते हैं कि वे असभ्य थे। ये यूरोपियन इतिहासकार वेदों के भ्रष्ट अर्थ करते हैं। मैं कालेज को बधाई देता हूं कि इसने इस दिशा में भी किसी सीमा तक काम किया है। पण्डित राजाराम और पण्डित आर्यमुनि जी ने पाश्चात्य आलोचना का उत्तर दिया है। हमारे कालेज के युवक, जिनको संस्कृत से प्रेम है, वे इस आलोचना का मुकाबिला करके दिखा सकते है और उनके मुकाबिलों में पाश्चात्य विद्वानों की आलोचना ठहर नहीं सकती।

दयानन्द कालेज के भक्त बनो

साराशं यह है कि एक ओर से पश्चिमी ढंग की आलोचना हमारे शिक्षित वर्ग पर प्रभाव डाल रही है, दूसरी ओर ईसाई मिशनरी सहस्रों लाखों नीच जातियों के लोगों को ईसाई बनाते हैं और इस प्रकार हमारे अंग अलग किए जा रहे हैं। अब प्रश्न यह है कि इसका बन्दोबस्त क्या हो सकता है। इसके लिए ऐसे जीवनों की आवश्यकता है कि जो पश्चिमी आलोचना का उत्तर दें, जो अनाथालयों में कार्य करें। जो शिक्षा दें, जो धन से जाति की सहायता करें। आर्य समाज आगे बढ़ेगा।

यदि आप आर्य समाज की विद्या और गुणों को सोचें तो आर्य समाज आपको विद्या और गुण देगा और बढ़कर काम करेगा। प्यारे छात्रो ! सच्चे विद्या-प्रेमी बनो। अपने अध्यापकों के चरण चिह्नों पर चलो। स्कूल में पढ़ाओ, कालेज में काम करो। अनाथालयों में काम करो। पाश्चात्य आलोचना का उत्तर दो। नीच जातियों में जाकर काम करो। जो लोग धन से सहायता कर सकते हैं, धन दें। जो तन मन समर्पण कर सकते हैं, तन मन समर्पण करें। यह समझें कि स्वामी दयानन्द ने जो झण्डा दिया है वह मुर्दा हाथों में नहीं है। आर्य समाज प्रत्येक अवसर पर अपने जीवन का प्रमाण प्रस्तुत करता है। स्मरण रक्खो, जो जीवन अपने आराम के लिए और अपना पेट भरने के लिए है, वह मनुष्य का जीवन नहीं।

मैं आशा करता हूं कि मैंने जिस भाव से ये विचार प्रस्तुत किए हैं, उसी भाव से आप इनको लेंगे।
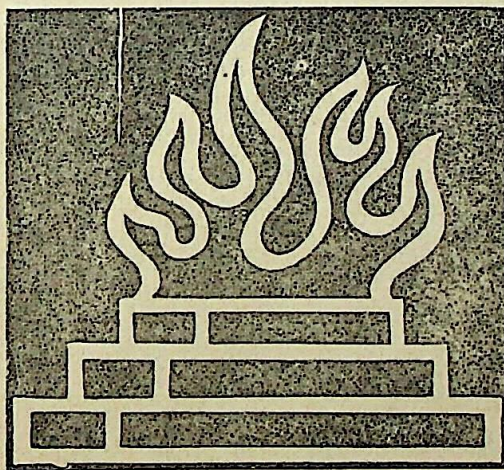
विज्ञान और आत्मज्ञान

—श्रीमती मदालसा नारायण—

शिखर, शिखर पर
मन्दिर पावन
ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित,
सरिता तट-पर
साधन रूप सुरम्य
तपोवन संस्थापित !
पुण्य भूमि भारत माता के
प्रांगण में कल्लोल करें,
बालक प्रिय संस्कारवान्
आराधन मन अनमोल धरें;
परम्परा युगयुग से ऐसी
हुई प्रवाहित भारत की,
मानसरोवर में नौका-विहार
करते वे जन-जन के,
अन्तरतम के मनोभाव संग
सैर करें मन सज्जन के !

मधुर-मधुर संगीत निनादित
नृत्य निरन्तर अन्तर में,
तरल तरंगित भाव-भावना
झंकृत नित अभ्यन्तर में ।
मनुजान्तर आनन्दित
चैतन्य प्रकाशित हुआ दिव्य,
दर्शन पवित्र चिन्तन गुणमय
संस्कार सचेतन सजग भव्य
हैं हुए आज तक अगणित
उत्तम अनुभव मानव जीवन में;
अत्यन्त मनोहर सुमन प्रफुल्लित
नित नव जीवन उपवन में ।
सद्धर्म प्रेममय सुरभित मानव
मन उन्नत नत युग-युग में;
विज्ञान-ज्ञान संगम पवित्र हो रहा
आज इस नव युग में !

विज्ञान और धर्म

—आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम'—

मानव के पैर चन्द्र के धरातल पर पहुंच गये, विज्ञान की यह सफलतासचमुच सराहनीय है । पर जब वैज्ञानिक जिन्हें धर्म में अभिरुचि नहीं है तथा जो धार्मिक विश्वासों को मिथ्या, रूढ़िग्रस्त और अनावश्यक समझते है, ऐसा कहने लगते हैं कि हिन्दू मुसलमान चन्द्र को जो महत्व देते थे वह निरर्थक सिद्ध हो गया, तब विषय चिंतनीय हो जाता है । वैज्ञानिकों के कथनानुसार पौराणिकता चाहे ग्रीस की हो या कि मिस्र की, या अरब की, आज के वैज्ञानिक युग में वह मान्यता प्राप्त नहीं कर सकती ।

जिस मत का आधार वैज्ञानिक सिद्धियों के प्रतिकूल है, वह अमान्य है । मुसलमान जिस ईद के चांद को देखकर अपना त्यौहार मानते हैं और हिन्दू स्त्रियां करवा चौथ के दिन अपना व्रत रखकर रात्रि के लगभग ९ बजे उदित होते हुये चन्द्र को अर्घ्य देकर अपना व्रत समापन करती हैं, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है । वह रूढ़ि मात्र है । बुद्धि ऐसे ढकोसलों को स्वीकार नहीं करती । आइये, वैज्ञानिकों की इस तथ्यपूरक उक्ति पर विचार करें ।

वैज्ञानिक उक्ति की जांच

वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग और परीक्षण किये हैं, वे वस्तुगत हैं । उनकी परिधि शरीर या आकृति मात्र तक सीमित है । शरीर के भीतर जो भावनात्मक सूक्ष्म अंश हैं, उसकीओर इन वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं गया । मनोविज्ञान जो अब अपने को दार्शनिक क्षेत्र से निकालकर वैज्ञानिक क्षेत्र में पैर रखने लगा है, मन की गतिविधियों पर विचार करता है,परन्तु भावना का जगत उसकी भी पहुंच से परे है । वह उद्वेगों का निरूपण कर सकता है, सुख और दुख के कारणों की मीमांसा कर सकता है, जागरण और अन्य स्वप्न की दशाओं का विश्लेषण कर सकता है, परन्तु भावभूमि उसके लिये अग्राह्य है ।

विज्ञान की कई शाखायें है, यथा—भौतिकी, रसायन जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भू-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान आदि। अब राजनीति भी अपने को पालिटिकल साइंस कहने लगी है। समाज-शास्त्र के रूप में कतिपय सामाजिक विज्ञान (सोशल साइंसेज) पनपने लगे हैं। इनका भी संबंध भावना जगत से नहीं है। तो क्या भावना अपना अस्तित्व नहीं रखती ? क्या मानव-विकास में उसका कोई स्थान नहीं है ? जिसे हम तत्व दर्शन कहते हैं विज्ञान का उससे भी कोई संबंध नहीं है ? प्रसिद्ध वैज्ञानिक मिलिख आइन्सटाइन ने जिस विश्वास को वैज्ञानिक के लिए अपरिहार्य माना है, वह भौतिकता की सीमा मे परे भी कुछ है-ऐसा संकेत देता रहा है। कैनेथ वाकर जैसे कतिपय विद्वान् कल्पना को भी वैज्ञानिक अन्वेषण में स्थान देने लगे हैं। विश्वास भावना पर अवलम्बित है। कल्पना भी भावना का पोषण करती है। अत: भावना और कल्पना का जगत वैज्ञानिकों को भले ही ढकोसला प्रतीत हो, उनका अस्तित्व है अवश्य। और उस अस्तित्व ने मानवता को आगे बढ़ाया है, इसमें भी संदेह नहीं। विज्ञान नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो भावना सूक्ष्म जगत का आहार है और उसका परिष्कार करने वाली भी।

जैसा विचार वैसा मनुष्य

लोकोक्ति है—"जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।" इसी के साथ यह लोकोक्ति भी चलती है:मनुष्य जैसा विचार करता है अथवा जैसी उसकी श्रद्धा होती है,वैसा ही वह बन जाता है। इतिहास इस मान्यता के उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस्लाम मजहब विश्वास को ही महत्व देता है। ईसाई मत वाले तथा अन्य धार्मिक सम्प्रदाय भी विश्वास को जीवन-विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। वैज्ञानिक इन्हें अन्धविश्वासी कह सकता है, पर उनका "अन्धविश्वास" भी किस प्रकार व्यक्तियों तथा जातियों को उन्नत करता है, उन्हें समृद्धिशाली बनाता है, तेज और यश देता है, इसे इतिहास के तथ्यवादी स्वर्णाक्षरी में आज भी पढ़ा जा सकता है।

सूर्य का आधार

सूर्य को लें। उसका जहां वैज्ञानिक रूप है, वहां एक दार्शनिक रूप भी है। अपने वैज्ञानिक रूप में वह अग्नि का धधकता हुआ एक गोला है जिसकी किरणें करोड़ों मील दूर चलकर नाना लोकलोकान्तरों को प्रकाश एवं ऊष्मा पहुंचाती है और जीवनी शक्ति की उत्पादिका एवं संवर्धिका बनती है। अपने दार्शनिक रूप में वह किसी अन्य शक्ति के द्वारा प्रकाश ग्रहण करता है। जैसे सूर्य का प्रकाश चन्द्र के माध्यम से हम सब पर प्रतिच्छायित होकर अपनी ऊष्मा का परित्याग कर देता

है और हमारे मन के लिए आह्लादकारी सिद्ध होता हैं। वैसे ही कोई अनन्त जीवन स्रोत है, प्रकाश का कोष है अथवा साक्षात प्रकाश स्वरूप है जिसके प्रकाश से यह सूर्य प्रकाशित होता है और उस प्रकाश को हम तक पहुंचाता है। जो वीर चन्द्रयान से चन्द्र में उतरे, उन्हें यहाँ से पृथ्वी भी वैसी ही हरे रंग में चमकती दिखाई दी जैसा हम सब चन्द्र को यहां से श्वेत रूप में चमकता देखते हैं। चन्द्र स्वत: प्रकाश रहित है। पृथ्वी भी प्रकाश रहित है। संभव है, सूर्य भी स्वत: प्रकाश रहित हो, पर जैसे उसके प्रकाश से अन्य ग्रह और उपग्रह प्रकाशित होते हैं वैसे ही वह स्वयं भी किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित हो सकता है। धार्मिक विश्वास ऐसा ही कहता है। मुण्डक तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों की यही मान्यता है।

यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस भी सूर्य को तेजोधारक लेन्स मात्र मानता था जिस पर किसी अन्य का प्रकाश प्रतिफलित हो जगत को प्रकाशित करता है। प्लेटो सूर्य को ईश्वरप्रभा रश्मियों से प्रज्वलित तेज कहता है। सूर्य प्रकाश का फोकस है जो उस मूल ज्योति की किरणों को लेन्स के रूप में सौर जगत के लोकों तथा प्राणियों तक पहुंचाता है। मूल ज्योति सूक्ष्मतम और एक है। सूर्य की किरणें अनन्त हैं—"एकं बीजं वहुधा य: करोति" वह महाज्योति दिव्य शक्ति ही अपनी एक ज्योति को नाना क्रिरणों में फैला देती है।

मानव बुद्धि का स्वरूप

मानव शरीर में बुद्धि सूर्य की स्थानीय है। जैसे सूर्य को परमात्मा प्रकाश देता है वैसे ही बुद्धि को विज्ञानात्मा या जीवात्मा। नाना किरणों के पुंज सूर्य भी इस ब्रह्माण्ड में अनेक हैं। इनमें से किसी-किसी का प्रकाश तो हम पार्थिव प्राणियों तक करोड़ों तथा अरबों वर्षों में पहुंच पाता है और सम्भव है किसी किसी का प्रकाश तो अब तक हम तक पहुंचा ही न हो

इन सूर्यो के प्रकाश भी हमारे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की भांति विभिन्न रूप रंग वाले हैं। किसी का प्रकाश पीला है, किसी का बैंगनी है तो किसी का पुखराजी।

विज्ञान ने चन्द्र तक पहुंचा दिया, परन्तु सूर्य अभी पहुंच से परे है। संभव है, वहाँ पहुंच भी न हो सके। तब वैज्ञानिक को कौन बता सकेगा कि यह सूर्य अपना

प्रकाश कहां से ग्रहण कर रहा है ? दर्शन और विज्ञान की बात जाने दीजिए, मानवता के स्वरूप का आकलन कीजिए तो आप देखेंगे कि सूर्य जैसे शरीर में प्राणों का संचार करता है वैसा ही चन्द्र मन को आह्लादित करता है। वैज्ञानिकों का चन्द्र उन्हें कुछ गीली मिट्टी दे देगा जिसके कण हमारे वातावरण में आते ही वाष्प का रूप धारण करके उड़ जायें। वह अपनी चट्टानों से संभव है कुछ मोती भी दे सकें, पर अनन्त काल से चन्द अपनी ज्योत्स्ना द्वारा मानव मन को जो आह्लाद देता आया है उसे कोई कैसे झुठला सकता है। अष्टमी और पूर्णिमा के चन्द्र को देखते ही जड़ सागर के जल में लहरों का ज्वार उठ सकता है। चेतन मानव के मन में भी उसे देखकर यदि भावनाओं का सागर उमड़े तो वैज्ञानिक को उस पर क्यों आपत्ति करनी चाहिए।

सूर्य और चन्द्र का प्रभाव

यजुर्वेद का पुरुष सूक्त चन्द्रमा को यज्ञ पुरुष के मन से उत्पन्न मानता है। सूर्य की उत्पत्ति उसके अनुसार यज्ञ पुरुष के चक्षु से है। चक्षु और सूर्य का सम्बन्ध वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। मन का और चन्द्रमा का भी सम्बन्ध है, इसे साहित्यिक अथवा कवि तो स्वीकार करते ही हैं, मनोवैज्ञानिक भी करेंगे। चन्द्र के धरातल की वैज्ञानिक प्रक्रिया चाहे जो हो, परन्तु उसकी कौमुदी विश्व भर के लिए मोहिनी बनी हुई है। औषधियों में वही रस का संचार करती है, प्रेम पुलकावली उसी के द्वारा उठकर न जाने कितने प्राणियों को तृप्ति प्रदान करती है। शुक्ल पक्ष में क्रमशः बढ़ती हुई वह कतिपय लताओं को पर्णदान देती है, तो कृष्णपक्ष में वह क्रमशः उन्हें पर्णविहीन भी करती है। सूर्य दिन के समय यदि पुष्पों में रंग भरता है जो मानव मन पर अपने आकर्षण का जादू डालते रहते हैं, तो संध्या के समय उन्हें फीका भी कर देता है। चन्द्र रात्रि के समय जहां चकोर को आप्यायित करता है वहां चकवा चकवी को वियुक्त भी करता है। सुख-दुख की मीमांसा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का विषय है, पर मन किसी वस्तु की अनुकूलता और प्रतिकूलता का वरण क्यों और कैसे करता है, इसे वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त भी यदि भावना का जगत अव्याख्यात रहता है तो इसमें किसका दोष है ? चन्द्र मन को अथवा सूक्ष्म जगत को अपनी चाँदनी द्वारा प्रभावित करता रहेगा।

विज्ञान और धर्म का सामंजस्य

विज्ञान का क्षेत्र धर्म से भिन्न है। काव्य क्षेत्र से भी भिन्न है। एक का आधार बुद्धि है, तो दूसरे का आधार भाव और विश्वास है। एक वस्तु परक परी-

क्षण करेगा तो दूसरा भाव परक विधाओं का विन्यास। मानव को दोनों की आवश्यकता है। उसे बुद्धि द्वारा भौतिक जगत में प्रगति करनी है, तो काव्य द्वारा भाव जगत में प्रवेश करना है और धर्म द्वारा आत्मोत्थान भी करना है। एक अभ्युदय का सम्पादन करता है तो दूसरा निःश्रेयस की सिद्धि देता है। वैसे धर्म व्यापक है। वह विज्ञान को भी अपने गर्भ के अन्तर्गत स्थान देता है, वैसे ही जैसे वह काम और अर्थ को धारण किये हुए है। वह विज्ञान की अवहेलना नहीं करता। उसे सहायक समझता है। यदि विज्ञान भी धर्म को साथ लेकर चले तो सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ होने लगेगी।
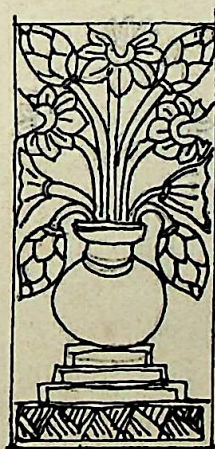
संगच्छध्वम्

—श्री सत्यभूषण योगी—

"अरे झूठ की इस दुनिया में सच क्या है, तुम ही वतलाओ"

"सच क्या है: कैसे वतलाऊं, सचमुच मुझको है नहीं पता
जाकर उससे पूछो, जिसने यह सव मायाजाल रचा है
मुझको तो लगता है, वह वेचारा भी कुछ नहीं जानता !
उसकी इस दुनिया में झूठे दग़ावाज़ कपटी हत्यारे
लूट रहे हैं मजे, देख कर भी वह अनदेखा करता है
और भले सज्जन शरीफ ये ज़ुल्म सह रहे हैं वेचारे
प्रभु को रहे पुकार, मगर क्या वहरा भी क्या कुछ सुन सकता !"

अच्छा योगी, तुम्हीं वताओ, तुम जवाव दे पाओ शायद
तुम कहते रहते हो—"ईश्वर जो करता अच्छा करता है"

मैं तो अव भी कहता—ईश्वर जो करता, अच्छा करता है
हां, मूर्खों, हिजड़ों की वातों के प्रति वह वहरा है वनता
सज्जन ! इनको सज्जन कहते ?—ये दुर्बल हैं, ये हिजड़े हैं
इनमें न संगठन कोई, विखरे पड़े हुए ये इधर-उधर हैं

मूर्ख—अवल की क्या सज्जनता, इसको तो कहते लाचारी
इन्हीं सज्जनों की कमजोरी, ज़ुल्म अगर दुनिया में वढ़ता
सहने वाले नहीं अगर हों, अत्याचारी क्या कर लेगा,
'अत्याचारी से ज़्यादा है पापी, अत्याचार सहे जो
प्रभु खुद रक्षा नहीं करेगा, मांगो, देगा मति, शक्ति तुम्हें
हरि तो सारथि वन रहते हैं, जव लड़ता अर्जुन ही लड़ता
दिखलाए अर्जुन विमूढ़ता कभी क्लीवता, हरि समझाते
पढ़ो सज्जनो, गीता—अर्जुन को हरि ने कैसा फटकारा

हर आत्मा है अर्जुन, उसके तनरथ का सारथि है ईश्वर
ईश्वर नहीं लड़ा करता है, जब लड़ता आत्मा है लड़ता
अत्याचार कहीं भी है यदि, उसकी सारी जिम्मेदारी
यहां सज्जनों के सिर पर है वे यदि मूक, महापापी हैं
झूठे दगावाज हत्यारे ये भी हैं," इनको मुगालता—
वहां नहीं तम रह सकता है, जहां एक भी सूरज उगता
'तस्माद् युध्यस्व' कहा हरि ने, अर्जुन का गाण्डीव तन गया
नष्ट हुआ कपटी दुर्योधन, संस्थापन हो गया धर्म का
'संगच्छध्वम्' संगच्छध्वम्' सुनो सज्जनो, 'संगच्छध्वम्'
गुनी वेद की शिक्षा जिसने, उसके साथ इन्द्र प्रभु चलता

पता : १६ ए—एल्गिन रोड
अम्वाला कैण्ट
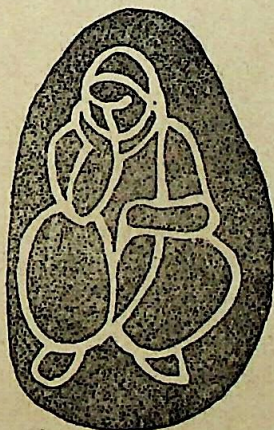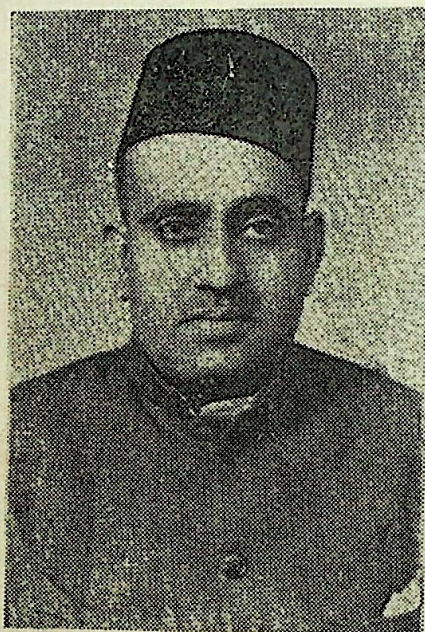
नाम—मदन लाल । काम—हलवाई ।

जन्म—लाहौर में, ६ मार्च १९१३ ।

स्वर्गवास—दिल्ली में, ६ मार्च, १९८१ ।

यह आकस्मिक संयोग था या इसमें भी विधाता का कोई अदृश्य संकेत था।

सन् १९४७ में देश का विभाजन । लाखों लोग शरणार्थी बन कर इधर से उधर गए और उधर से इधर आये ।

पाकिस्तान क्या बना, लाखों लोगों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा ।

मदन लाल हलवाई भी शरणार्थी बनकर, सब कुछ गंवाकर, लाहौर से दिल्ली आये और अपने परिश्रम से धीरे-धीरे, तरक्की करते-करते, राजधानी के प्रसिद्ध हलवाइयों में गिने जाने लगे ।

धन का अम्बार लग जाने पर भी न धार्मिक प्रवृति में कमी आयी और न दानवीरता में ! धर्म और परोपकार के कामों में सदा खुले हाथों दान देते रहे ।

उनके परिवार में भी यही दानवीरता की भावना विद्यमान है ।

महात्मा हंसराज : एक पुण्य स्मरण

—डा. भवानीलाल भारतीय, अध्यक्ष दयानन्द अनुसंधान पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

आर्यसमाज के महान् त्यागी, तपस्वी तथा शिक्षा हेतु सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने वाले महात्मा हंसराज जी का जन्म १९ अप्रैल १८६४ ई० को होश्यारपुर जिलान्तर्गत बजवाड़ा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री चुन्नीलाल तथा माता का नाम गणेश देवी था। आर्यसमाज लाहौर के प्रथम मंत्री सांईदास जी की प्रेरणा से जो नवयुवक आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए उनमें हंसराज जी सबसे योग्य एवं समर्पित व्यक्तित्व धारी थे। १८८५ ई० में उन्होंने पंजाब विश्व विद्यालय से बी० ए० की परीक्षा द्वितीय स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। इतिहास तथा संस्कृत में उन्हें विशेष योग्यता प्राप्त हुई।

जब १८८३ में स्वामी दयानन्द का निधन हुआ तो उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से उनके स्मारक के रूप में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज स्थापित करने का निश्चय किया गया। उस समय हंसराज ने अपने को इस महाविद्यालय के हेतु समर्पित कर दिया। उन्होंने यह घोषणा की कि वे कालेज के प्राचार्य पद पर अवैतनिक रूप से कार्य करेंगे।

परन्तु उनकी गृहस्थी का सम्यक् रूप से निर्वाह होता रहे, इस दृष्टि से उनके बड़े भाई लाला मुल्कराज ने उन्हें ४० रु० मासिक नियमित रूप से सहायता देने का निश्चय किया। महात्मा जी का अपने बड़े भाई के प्रति सम्मान जीवन पर्यन्त बना रहा। जब लाला मुल्कराज लाहौर रहने लगे तो महात्मा जी अपने बड़े भाई तथा भावज से भेंट करने हेतु प्रायः नित्य ही उनके निवास स्थान पर जाते थे।

डी० ए० वी० संस्था सर्वप्रथम एक स्कूल के रूप में स्थापित हुई, किन्तु बहुत शीघ्र ही उसने एक विशाल महाविद्यालय का रूप धारण कर लिया। पंजाब की एक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था के रूप में इस कालेज को विकसित करने में महात्मा जी का अपूर्व योगदान था। उनके आचार्य काल में उस कालेज ने अपूर्व उन्नति की। बिना कोई सरकारी सहायता प्राप्त किये, उस युग में किसी महाविद्यालय का

सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचना वस्तुतः एक आश्चर्य ही था। कला, विज्ञान, वेद, संस्कृत के अतिरिक्त आयुर्वेद, कला-कौशल उद्योग आदि की लोकोपयोगी शिक्षा का प्रबंध भी महात्माजी के निर्देशन में किया गया था। वे स्वयं महाविद्यालय के छात्रों को धर्म शिक्षा पढ़ाया करते थे।

महात्मा जी त्याग और तपस्या की साक्षात् प्रतिमा थे। डाक्टर गोकुलचंद नारंग ने एक सभा में महात्माजी के सम्बन्ध में निम्नउ दाद्गार व्यक्त किये थे—"कुछ लोग महात्मा हंसराज की प्रशंसा में कहते हैं कि वह आर्य समाज के महात्मा गांधी थे, त्याग के दृष्टिकोण से देखें तो यह कहना अधिक उचित है कि महात्मा गांधी राजनीति के हंसराज हैं।" महात्मा जी का त्याग और तपस्या अनुपम था। वे कालेज से डेढ़ मील पर रहते थे। पैदल कालेज आते। उनकी बैठक में एक सादी दरी तथा चौकी बिछी होती।

१९२० में जब असहयोग आन्दोलन की धूम धाम थी और अनेक शिक्षण संस्थायें छात्रों के असहयोग के कारण बंद हो रही थीं, उस समय भी महात्माजी ने अपनी दूरदर्शिता दिखाई तथा डी० ए० वी० संस्थाओं को यथावत् जारी रखा। महात्माजी सच्चे ईश्वर भक्त, वैदिक धर्म के अनन्य अनुयायी तथा महर्षि के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे। उनकी पावन स्मृति में मेरा विनम्र प्रणाम।

पुण्यश्लोक महात्मा
हंसराजजी को एक स्मरणांजलि

मूल एक:फूल अनेक

—सत्यदेव विद्यालंकार, भू० पू० आचार्य
अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय, टंकारा—

आर्यसमाज ने अपने प्रारम्भिक युग में ऋषि दयानन्द के पट्टशिष्य दो अप्रतिय महारथी विश्व को भेंट में दिए। ऋषि भक्ति में अप्रतिम, त्याग में अप्रतिम, आदर्श में अप्रतिम तथा कार्य में अप्रतिम। दोनों ने शिक्षा क्षेत्र में नए मान दण्ड स्थापित किए, समाज-कार्य में, आर्य समाज के संगठन में तथा शुद्धि आदि-जन-कल्याण कार्यों में नए आदर्श उपस्थित किए। आदर्श ही नहीं उपस्थित किए, नई परम्पराएं स्थापित कीं।

जो लोग म० हंसराज जी तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी को अलग २ समझना चाहते हैं—उनके दृष्टि कोण, लक्ष्य और जीवन-दर्शन की गहराई जाँचना चाहते हैं, वे सदा असफल होंगे।

चण्डीगढ़ विश्व विद्यालय के तालाब के किनारे कुछ गुलाब की पंक्तियां लगी हैं। नीचे एक ही डंडी है—ऊपर अनेक रंग के फूल हैं।

युगद्रष्टा ऋषि दयानन्द के शिक्षा-दर्शन के आधार पर दो महापुरुषों ने दो संस्थानों को जन्म दिया। मूल भावना ऋषि के विचारों का प्रचार और प्रसार थी—साधनों के रूप में व्यापकता और गहराई की दृष्टि से भेद था।

तीन प्रकार की संस्थाएं

मैंने १४ वर्ष गुरुकुल में शिक्षा पाई। ३६ वर्ष डी० ए० वी० शिक्षा संस्थाओं में कार्य किया और १४ वर्ष उपदेशक-विद्यालय का कार्य चलाया। अतः मैं इन संस्थाओं के सापेक्ष महत्व को कुछ कुछ समझ पाया हूं। अकेले सब संस्थाएं आर्य-समाज की दृष्टि से अपूर्ण हैं, पर मिलकर यह सब आर्य समाज और उसके जीवन तथा कार्य का अनिवार्य अंग बन जाती हैं।

उपदेशक विद्यालय का लक्ष्य मुख्य रूप से प्रचारक तैयार करना हैं, गुरु-कुल का उद्देश्य समाज के विभिन्न जीवन-क्षेत्रों में ऋषि-विचारों से अनुप्राणित

सफल कार्यकर्त्ता बनाना है और डी० ए० वी कालिजों का लक्ष्य सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में, राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक भाग में, ऋषि-विचारों को पहुंचा देना है।

ऐसे प्रिंसिपल देखे हैं

यह ठीक है कि काल चक्र ने इन सब आदर्शों और लक्ष्यों को मद्धम कर दिया है। मैं जब १९३९ में डी० ए० वी० कालिज जालन्धर में कार्य के लिए गया, तब घुटनों तक धोती और शरीर पर एक बण्डी डाले जिस वृद्ध तपस्वी प्रिंसिपल के दर्शन किए थे, ऊना डी० ए० वी० कालिज में जिस तपस्वी ब्राह्मण प्रिंसिपल का कमरा देखा था--जिसमें एक लकड़ी का तख्तपोश और दो लकड़ी की कुर्सियां मात्र थे—तथा डी० ए० वी० कालिज होशियार पुर में जिस तपस्वी त्यागी प्रिंसिपल के दर्शन किए थें—जिसकी कमीज कन्धे पर फटी हुई थी;—तब आज के डी० ए० वी० कालिजों के प्रिंसिपलों की कल्पना न कर सका था जिनकी कोठी के बाहर कार खड़ी रहती है और अन्दर ३-३ चपरासी पहरे पर तैनात रहते हैं।

उन पावन प्रिंसिपलों के रूप में मैंने प्रत्यक्ष ऋषि-तुल्य म० हंसराज जी के दर्शन किए जिनके आदर्श तपस्वी जीवन ने इतने तपस्वी व्यक्तियों को जन्म दिया।

इसी प्रकार गुरुकुल के आचार्य का जो दिव्य रूप म० मुन्शीराम जी ने प्रकट दिया और जो विलक्षण वातावरण उन्होंने उस समय तैयार किया वह आज कहाँ है ?

वस्तुतः जैसे वायु के प्रबल वेग से तुच्छ तिनके में भी आसमान की ऊचाइयों को नापने की शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार सदियों बाद प्रकट होने वाले प्रखर ज्योति-पुंज ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में जो भी संस्कारी प्राणी आए, उन्होंने चरित्र में, त्याग-तपस्या में, कार्य शक्ति में और आदर्श चरित्रों के निर्माण में आसमान को ऊंचाइयों को नापा।

दो झलकियां

सर्वस्व-त्याग की दो झलकियों के साथ इस श्रद्धाञ्जलि को समाप्त करता हूं।

म० मुन्शीलाल जी ने गुरुकुल कांगड़ी के एक अविस्मरणीय उत्सव पर जब घोषणा की कि उन्होंने अपनी भौतिक सम्पत्ति के अन्तिम अंश जालंधर की विशाल कोठी को भी आर्य समाज के अर्पण कर दिया—और अब उनके पास

सम्पत्ति का कोई अंश भी शेष नहीं बचा, तो विशाल जन-समूह स्तब्ध रह गया। अनेक लोग ऊंची ऊंची सिसकियाँ भरने लगे। गुरुकुल के लिए धन की अपील पर १ लाख से भी अधिक रुपया एकत्र हुआ।

केवल यह कोठी ही हरिश्चन्द्र और इन्द्र (स्वामी जी के पुत्र) के लिए भौतिक विरासत की वस्तु थी।

इसी प्रकार रात्रि भर गायत्री का जाप कर और अपने अन्दर सात्विक प्रकाश का अनुभव कर जब महात्मा हंसराज जी ने घोषणा कि की वे आजीवन अवैतनिक सेवा कार्य में डी० ए० वी० संस्था को अपने को अर्पित कर देना चाहते हैं तो आर्यसमाज में निराशा के बादल छंट गए। एक ऐसी शक्ति शाली संस्था का सूत्र पात हुआ—एक ऐसे आन्दोलन का सूत्र पात हुआ जो आज सम्पूर्ण भारत में फैल गया है।

आज महात्मा हंसराज जी के प्रति अपने श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हुए क्या हम उस प्रेरणा-स्रोत का ध्यान कर सकेंगे जिसमें इन पावन बलिदानों की भावना भरने का सामर्थ्य था। शायद इस स्मरण से हमारे जीवनों में भी कुछ पवित्रता आ जाए।

पता :— सत्यदेव. विद्यालंकार
शान्तिसदन, जालन्धर
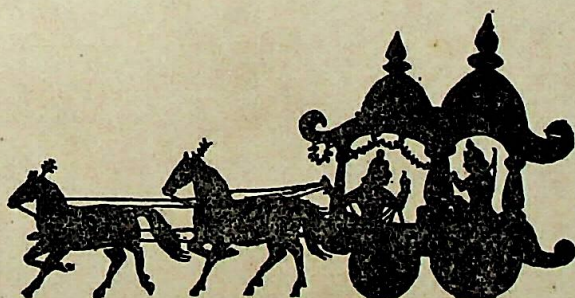
देश के आधार तुम !

—श्री राम आगार—

तुम कि मेरे देश का आधार बनने जा रहे हो ।
पूछता हूं मैं, तुम्हारे स्वयं का आधार क्या है ?
प्रश्न से चौकों नहीं, अपना जरा अन्तर टटोलो ।
जो कि मन तुम से कहे, विश्वास से वह बात बोलो ।।

मैं नहीं कहता कि तुम लायक नहीं, काबिल नहीं ।
मानता हूं जीत मन पाना कभी मुश्किल नहीं ।
पर अगर तुमने छला मन, मित्र ! तो अन भी छलोगे ।
इस तरह यदि चल गया छल, तो भविष्यत् भी छलोगे ।
मीत, मन को जरा तोलो, मन कहे वह बात बोलो ।
जो नही मन का बना, जन का बने, अधिकार क्या है ?
स्वप्न तुमने कुछ गढ़े थे, जागरण के उन पलों में,
खो गये वे स्वप्न, सत्ता और विभव की हलचलों में ।
चाहते थे तुम स्वयं मन से कि वे आकार पाएं,
और गीले दृग, गरीबी के अधर तक मुस्कराएं ।
बहुत मन माना किया, मन की मगर कब कह सके तुम ?
जो अथाह अभाव में डूबा, न उसके बन सके तुम ।
इसलिये जन घुट रहा है, इसलिये मन घुट रहा है ।
काफिला जो था तुम्हारे साथ, तुमसे छुट रहा है ।
समय संकट के क्षणों में, मन तुम्हारा कह सकेगा ?
उस अधरे चित्र का अब रूप क्या, आकार क्या है ?

सोम क्या है—इस पर पूर्व और पश्चिम के विद्वानों में बड़ा मतभेद है। लेखक ने अनेक वर्षों तक वेदों का नियमपूर्वक स्वाध्याय किया है। अव भी यह क्रम निरन्तर जारी है। अपने अध्ययन, चिन्तन और मनन के वल पर सोम के सम्वन्ध में वह जिस निष्कर्ष पर पहुंचा है, उसे सप्रमाण उसने यहां प्रस्तुत किया है। लेखक के गहन अध्ययन और तत्त्वपेशल सार-दृष्टि की झलक सर्वत्र दिखती है। सुधी पाठक लेखक के निष्कर्षों पर विचार करें।

वेद में सोम देवता
(सर्वं हि सोमः)

—मनोहर विद्यालंकार—

ऋग्वेद के नवम मण्डल के सम्पूर्ण ११४ सूक्तों का देवता सोम है। ६ अन्य सूक्त तथा सम्पूर्ण सामवेद इसी के लिए अर्पित है। वेदों में सोम देवता वाले मन्त्र १२१५, और सहचारी देवों के साथ ४६ मन्त्र मिला कर कुल १२६१ मन्त्र हैं। अग्नि और इन्द्र के पश्चात् सोम देवता का सबसे अधिक महत्त्व है। इसके इतने व्यापक अर्थ हैं कि विश्व के सब पदार्थ इसके अर्थ में समा जाते हैं। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि 'सर्वं हि सोमः' (५-५-४-११)

सोम शब्द के अर्थ

सोम शब्द के कोश में १८ अर्थ दिये हैं। १. एक पौधा २. सोम पौधे का रस, ३. देवताओं का पेय रस, ४. चन्द्रमा, ५. प्रकाश किरण, ६. कपूर, ७. जल ८. वायु-पवन, ९. कुबेर १०. शिव, ११. यम, १२. सुग्रीव, १३. मुख्य-प्रधान-श्रेष्ठ (नृसोम-नृसिंहवत्), १४. कपि-बन्दर, १५. सोम नाड़ी, १६. आकाश, १७. स्वर्ग, १८. चावल।

महर्षि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में 'सुवति चराचरम् अथवा सूयते यत्' व्युत्पत्ति देकर—१. जगदीश्वर, सृष्टिकर्ता, २. ऐश्वर्ययुक्त व ऐश्वर्य प्रापक राजा, विद्वान्, ३. शुभ गुण प्रेरक परमात्मा, राजा, पिता, गुरु आदि, और ४. जगत्,

'भोग्य पदार्थ' सब प्रकार के ऐश्वर्य तथा ऐश्वर्य सामग्री आदि अनेक अर्थ किये हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' में एक स्थान पर गिलोय (अमृता) को सोम वल्ली माना है।

श्री अरविन्द ने सोम शब्द का अर्थ आनन्द रस या अमृत रस किया है। इस प्रकार वे इसका सम्बन्ध विज्ञानमय कोश या आनन्दमय कोश से अधिक मानते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों ने सोम शब्द के अर्थ— सत्य, श्रीः, ज्योति, राजा, चन्द्रमा, प्रजापति इत्यादि गुण वाचक तथा कर्तृवाचक; और पलाश, दधि, अन्न हविः, प्राण, रेतस्, आप इत्यादि भोग्य पदार्थ या कर्म वाचक; और इन भोग्य पदार्थों के भोक्ता के रूप में 'पुमान् वै सोमः' 'सोमो वै ब्राह्मणः' इत्यादि अनेक वाक्य देकर; सोम को कर्ता, भोक्ता और भोग्य रूप में मान कर 'सर्वं हि सोमः' की मान्यता को पुष्ट किया है।

विदेशी विद्वानों के अर्थ

प्रसिद्ध विद्वान् ए० बी० कीथ सोम को सुरा सदृश पदार्थ मानता है। विद्वान् वाट की सम्मति में अफगानिस्तान में प्राप्त द्राक्षा का आसव ही सोम रस है। मनीषी रायस की कल्पना है कि गन्ने का रस ही सोम रस है। श्री हिल ब्रान्ट की सम्मति में एक प्रकार का मधु (शहद) ही सोम है। कुछ विद्वानों का मत है कि जिस प्रकार मधुरता की पराकाष्ठा दिखाने के लिए अमृत, सुन्दरता की पराकाष्ठा व्यक्त करने के लिए कामदेव, सुख की पराकाष्ठा को चित्रित करने के लिए स्वर्ग की कल्पना की गई है, उसी प्रकार सर्वगुण सम्पन्न पेय पदार्थ के रूप में सोम कल्पित किया गया है। इसीलिए इसे देवताओं का पेय भी कहते हैं। इन्द्र देवताओं का राजा प्रत्येक सवन में इसी का पान करता है—ऐसा माना जाता है।

वेद का अध्ययन करने वालों को विदेशी विद्वानों के इन अर्थों से कोई विरोध नहीं है। स्वयं भारतीय विद्वान् भी सोम को उत्तम पीयूष, अथवा रोगों को दूर करने वाली भेषज या दीर्घायुष्य प्रदान करने वाला पेय स्वीकार करते हैं।

भारतीय और विदेशी विचार धारा में विरोध तब होता है जब पाश्चात्य विद्वान् सोम शब्द के दूसरे अर्थों की बिलकुल उपेक्षा कर देते हैं और इसे पेय रस अथवा रोग-निवारक और बलदायक औषध के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

यदि इस शैली का कठोरता से पालन किया जाए तो विश्व साहित्य के उत्तम से उत्तम और युक्तियुक्त सन्दर्भों को भी हास्यास्पद सिद्ध किया जा सकता है। और इसके विपरीत विद्वज्जनोचित रीति को अपना कर दूसरे धर्म ग्रन्थों की हास्यास्पद लगने वाली कथाएं और उक्तियां भी उपयोगी शिक्षाएं और प्रेरणाएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

वेद के अन्तः साक्ष्य द्वारा सोम शब्द के अर्थों का निश्चय

१. वेद मन्त्रों के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सोम ओषधियों में राजा की तरह विशेष स्थान रखता है।क यह रोगी हुऐ विश्व का निदान तथा चिकित्सा करने वाला है।ख सोम रस को पीकर मनुष्य नीरोग, दीर्घायु तथा सशक्त बनते हैं। इसलिये कुछ स्थानों पर इस शब्द का अर्थ ओषधवीरुध और इस ओषध का रस अथवा इस ओषध का प्रयोग करने वाला चिकित्सक अर्थ करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

२. ब्रह्मज्ञानी (ब्राह्मण) जिसे सोम समझते हैं, उसे मनुष्य खा नहीं सकता है।क वायु का विशिष्ट प्रयोग (प्राण साधना) सोम रक्षक है।ख और इस सोम रक्षा के द्वारा शरीर कान्त तथा अलंकृत होता है।ग इससे संकेत मिलता है कि सोम का अर्थ वीर्य किया जा सकता है। प्राणायाम वीर्य रक्षा या इसके ऊर्ध्वीकरण में सहायक होता है। ऊर्ध्व रेता बनने की इच्छा वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी प्राणसाधना या योगाभ्यास में सदा लगे रहते हैं। अथर्व वेद में स्पष्ट वर्णन है कि शक्तिशाली तथा प्रत्येक कार्य को निर्बाध रूप से कर सकने वाले प्राणी का वीर्य ही सोम है।घ

यह सोम इन्द्र का पेय है। यदि कोई व्यक्ति अपने समाज या समुदाय में राजा की तरह देदीप्यमान और ऐश्वर्य सम्पन्न बनना चाहता है तो उसे सोमपान (रक्षण) करना चाहिए। इस प्रकार सोमयाग, सोमक्रतु या सोम क्रिया का अनुशीलन ही इन्द्र बनने का उपाय है।ङ

३. ऋग्वेद में एक स्थान पर सोमपान करने वाले इन्द्र के घर में तीन सोमों का वर्णन है और साथ ही कहा है कि तीन कोश सोम से लबालब भरे हुए तीन कुण्ड हैं, जिनमें से सोम निरन्तर स्रवित होता रहता है।क

---

१. क. सोमो वीरुधामधिपतिः। अथर्व ५-२४-७ ख. भिषक्ति विश्वंयत्तुरम्। ऋक् ८-७९-२

ग. अपाम सोमममृता अभूम। ऋक् ८-४८-३

२. क. सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन। ऋक् १०-८५-३

ख. वायुः सोमस्य रक्षिता। ऋक् १०-८५-५

ग. अरं ते सोमस्तन्वे भवाति। ऋक् ६-४१-४

घ. अयं सोमो वृष्णो अश्वस्यरेतः। अथर्व ९-१०-१४

ङ. इन्द्राय पातवे सुतः। ऋक् ९-१-१ दिवो घर्तासि शुक्रः पीयूषः। ऋक् ९-१०९-६

क. त्रयः इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य। स्वे क्षये सुतपाव्नः॥ ऋक् ८-२-७
त्रयः कोशासश्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः। समाने अधिधर्मन्॥ ऋक् ८-२-८

यह वर्णन सोम के सम्बन्ध में एक जिज्ञासा उत्पन्न करता है। जिसका समाधान करते हुए सोम के विषय में अनेक कल्पनाएं उद्भूत होती हैं।

तृतीय सोम

(क) सोम का अर्थ श्रेष्ठ पदार्थ या सारवस्तु होना चाहिए। और मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण (अव्यक्त) शरीरों में जो सर्वश्रेष्ठ सार वस्तु है, उसी को सोम समझना चाहिए। इस प्रकार स्थूल शरीर में जो मुख्यतया अन्न से वनता है—सर्वश्रेष्ठ अथवा सार वस्तु, जिसे पीयूष भी कह सकते हैं, वीर्य है। वीर्य के अतिरिक्त शेष पदार्थ फल्गु या पुरीष है। सूक्ष्म शरीर में —जो मुख्यतया प्राण के ऊर्ध्वीकरण से बनता है, सर्वश्रेष्ठ अथवा सारवस्तु, जिसे पीयूष भी कहते हैं—मन है। मन के अतिरिक्त शेष पदार्थ फल्गु या पुरीष है।

अव्यक्त (कारण) शरीर में—जो मुख्यतया किसी भी प्रकार के आनन्द की अनुभूति मात्र है—और जो प्राणी मात्र में समान है—आनन्द ही सर्वश्रेष्ठ सारवस्तु या पीयूष है। इस शरीर में आनन्द के अतिरिक्त शेष सब फल्गु या पुरीष है।

इस तरह स्थूल शरीर में वीर्य, सूक्ष्म शरीर में मन और कारण (अव्यक्त) शरीर में आनन्द सोम है। ये ही वेद मन्त्रोक्त तीन सोम हैं। ये ही तीन कोश सोम से भरे हुए तीन कुण्ड हैं, जिनमें से प्रतिक्षण सोम स्रवित होता रहता है।

विचारानन्तर प्रतीत होता है कि सूक्ष्म शरीर को भी तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। मन का स्थूल भाग प्राणमय कोश, सूक्ष्म भाग मनोमय कोश, और अव्यक्त भाग विज्ञानमय कोश है। प्राणमय कोश का सार भाग मन और फल्गु पदार्थ प्राण है। मनोमय कोश का सार भाग विज्ञान (ऋतम्भरा प्रज्ञा) और फल्गु पदार्थ संकल्पविकल्पात्मक मन, और विज्ञानमय कोश का सार भाग आनन्दमय अनुभूति का ज्ञान और फल्गु पदार्थ संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधिगत ज्ञान है।[1]

यह सोम अन्न के रूप में स्थूल शरीर (अन्नमय कोश) में प्रविष्ट होता है, क्योंकि वृक्ष वनस्पतियों का यह सार है। स्थूल शरीर में इस अन्न का ऊर्ध्वीकरण होकर सार रूप में वीर्य बनता है। यह वीर्य प्राणमय कोश के लिए अन्न रूप है, और वीर्य का अर्ध्वीकरण होकर सार वस्तु बनता है, और प्रजोत्पादक वीर्य फल्गुरूप में शेष रह जाता है। प्राणमय कोश का प्राण मनोमय कोश (सूक्ष्म शरीर) के लिए अन्न रूप है, इसका ऊर्ध्वीकरण होकर सार रूप में संकल्पविकल्पात्मक मन बनता है। इस कोश का सार रूप मन विज्ञानमय कोश के लिए अन्न रूप है। इस मन का

---

१. अन्नं सोमः। कौ०। रेतः सोमः। कौ०। प्राणः सोमः। शत० ७-३-१-२
मनो वै प्राणानामधिपतिः। शत० ७-५-२-६। सोमो विश्ववित् स्वर्वित्।
ऋ० ९-२७

अर्ध्वीकरण होकर ऋतम्भरा प्रज्ञा सार रूप में प्रकट होती है, जो आनन्दमय कोश के लिए अन्न का काम करती है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा जब संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधिगत ज्ञान से शून्य आनन्दानुभूति मात्र शेष रह जाती है, तब यह आनन्दमय कोश का सोम कहाती है।क

इस प्रकार तीनों शरीरों या पांचों कोशों के साररूप सर्वश्रेष्ठ तत्व ही तीन सोम हैं।

ख. 'त्रयः सोमाः' कह कर एक प्रकार से 'सर्वं हि सोमः' की व्याख्या की गई है। सर्वत्र तीन की आवश्यकता होती है १—जगत् को बनाने वाला, २—जगत् के पदार्थों को भोगने वाला, ३—भोग्य पदार्थों का समुदाय जगत्। इस प्रकार १—जगत् का सवन करने वाला परमात्मा, २—भोग्य रूप में सवन किया जाने वाला जगत्, और ३—इस जगत् को भोगने वाले जीव तीनों ही सोम हैं।

शिक्षा देने वाला गुरू, शिक्षा ग्रहण करने वाला शिष्य और शिक्षा तीनों ही सोम हैं। अर्थात् संस्कार करने की क्रिया (सवन) सोम है, संस्कार करने वाला सोम है, और जो संस्कृत हो रहा है या जिसके लिये सोम संस्कृत किया जा रहा है, वह भी सोम है। इस प्रकार जो सोम के तीन रूपों को समझ लेता है वह सबको समझ लेता है। उसके लिए कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रहता।

ग. सोम के पांच रूपों की भी झलक लीजिए—

क. शुचिरसि पुरुनिष्ठाः क्षीरैर्मध्यतः आशीर्तः। दध्ना मन्दिष्ठः॥

ऋक् ८-२-९

यह सोम पुरु-पुरि-स्थूल शरीर में पवित्र वीर्य के रूप में दीप्त सोम है। मध्यतः— सूक्ष्म शरीर में (क्षीरैः) इन्द्रियों के शासक प्राणों के द्वारा पवित्र और मिश्रित होकर शुचि दिव्य दृष्टि को धारण करता है। और अन्त में अव्यक्त (कारण) शरीर नि (सहस्रारचक्र) में स्थाः—स्थित होकर ध्यान द्वारा मन्दिष्ठ-आनन्दानुभूति मात्र सोम बनता है। क्षीर= प्राण (क्षि निवासगत्योः) शरीर के धारण और गति का कारण होने से। दध्ना=ध्यान द्वारा। दधि=ध्यानम्।

ग. १. इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः॥ ऋक् ९-५-९, इन्दु (सोम) के पांच रूप।

२. सोमा पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः। मित्राः स्वानाः अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥ ऋक् ९-१०१-१०

मित्रः—प्रमीतेस्त्रायते। नि०

यह सोम वीर्य रूप से सन्तानोत्पत्ति करने वाला प्रजापति है, ऊर्ध्वीकरण द्वारा पवित्र हुआ पवमान प्राण अथवा इन्द्रिय रूप धारण करता है, प्राणसाधना द्वारा निश्चल मन 'इन्दु' कहाता है; दुःखों, दुरितों कामनाओं से रहित करने के कारण 'हरि' कहाता है। कामना शून्य स्थिति ही सब ऐश्वर्यों की जननी है, इसलिये यह 'इन्द्र' बनता है। और तब अनायास ही सब ओर से आनन्द की वर्षा होने लगती है—यही इसका वृषा रूप है।[1]

अन्नमय कोश में रोग, दुःख, मृत्यु से रक्षा करने के कारण यह मित्र है; प्राणों को स्वस्थ, अनुद्विग्न बनाए रख कर प्राणमय कोश में (सु+आ+अन प्राणने) स्वान है; हमारे मन को ईर्ष्या द्वेष आदि से अलग रखकर हमारे मन को निष्पाप बनाने वाला **अरेपस** है; विज्ञानमय कोश की चेतना को दिव्य बनाकर ऋतंभरा प्रज्ञा देने वाला (सु+आ+धीः) **स्वाधीः** है और अन्त में आनन्दमय कोश में ज्योति प्रकट करके, आनन्द देने वाला स्वर्वित् है।[2]

सोम के प्रसंग में कुछ विशिष्ट शब्द

पीयूष व पुरीष

जिस प्रकार विश्व के सब पदार्थों को प्राण (भोक्ता) और रयि (भोग्य) दो भागों में विभक्त किया जाता है, उसी प्रकार संसार के प्रत्येक पदार्थ को पहिले उत्पन्न होने के कारण (सूयते इति) सोम कहते हैं, और फिर उस का संस्कार करने के बाद संस्कृत (सुत) भाग को पीयूष और अवशिष्ट भाग को पुरीष कहते हैं।[1]

उदाहरण के लिए अन्न, वस्त्र, लकड़ी पदार्थ होने से सोम हैं। इनमें संस्कार करने के बाद अन्न से रस, रक्त, वीर्य बनते हैं; वस्त्र में संस्कार करने के बाद कुर्ता पाजामा बनते हैं, और लकड़ी से मेज, कुर्सी बनते हैं; तो वीर्य—कुर्ता, पाजामा-और कुर्सी मेज सोम या पीयूष (सार भाग) कहलायेंगे और अपेक्षया रस अन्न-कपड़े की कतरनें, पहिया—और लकड़ी के कटे हुए टुकड़े, छीलन—पुरीष (फल्गु भाग) कहलाएंगे। सोम के प्रसंग में—सोम, पीयूष, अमृत शब्द सार भाग के लिए और पुरीष ऋजीष शब्द फल्गु भाग के लिए प्रयुक्त होते हैं।[2]

---

१. पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्। ऋक् २-१३-१। अप्सु स पीयूषं धयति। ऋक् २-३५-५।
दिव. पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। ऋक् ९-५१-२।
यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्। ऋक् ५-४५-६।
२. यत्सोमस्य पूयमानस्यातिरिच्यते तदृजीषम्। नि० ५-१२।

सवन व सुत

इस प्रकार मूल पदार्थ सोम है, संस्कार क्रिया के बाद सार भाग भी सोम, और सार भाग से अवशिष्ट बचा पदार्थ पुरीष या ऋजीष है। इस संस्कार क्रिया को सवन या पवन भी कहते हैं। सवन के बाद सार पदार्थ सुत कहाता है। और पवन क्रिया के बाद पूत या पवित्र कहलाता है। **सूयमानः—सुतासः—पूयमानः—पूतासः** शब्द इसी क्रिया को प्रदर्शित करते हैं। इसी क्रियासाम्य से ही पुत्र को सुत या पूत भी कहा जाता है।

आपः

सोम देवता के मन्त्रों में सोम को **आपः** से धोने, शुद्ध करने का बहुत वर्णन है। प्रायः भाष्यकारों ने आपः का प्रसिद्ध अर्थ जल किया है और उससे सोम ओषधि को धोने की बात कही है। किन्तु विचारानन्तर आपः का अर्थ प्राण करना अधिक संगत लगता है। क्योंकि वीर्य, प्राण, मन और ज्ञान को जल शुद्ध नहीं कर सकता। हां प्राण की साधना (योग) से इन को शुद्ध पवित्र तथा सूक्ष्म बनाया जा सकता है।[१]

इसी प्रकार जब आपः में सब भेषजों की चर्चा है या दुरित, द्रोह और अनृत को दूर करने की प्रार्थना है, वहां भी इसका अर्थ प्राण ही करना उचित होगा, क्योंकि जल स्थूल शरीर के दुरितों को दूर कर सकता है, लेकिन द्रोह और अनृत को दूर करने का सामर्थ्य प्राणायाम में माना जा सकता है, जल में नहीं।[२]

सोम=स+उमा

सोम शब्द ने 'सह-उमया' व्युत्पत्ति द्वारा पुराणों में जाकर उमा और शिव का युगल रूप धारण कर लिया है।

यह सोम शब्द ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का भी अभिव्यञ्जक है। अन्नमय कोश या स्थूल शरीर को **सत्** शब्द व्यक्त करता है। सूक्ष्म शरीर या प्राण-मन-

---

१. प्राणा वा आपः। मै०। आपो वै प्राणाः। शत० ३-८-२-४। अप्सु धौतम्। साम १००६।
पुनानः सोमधारयापो वसानो अर्षसि। साम ६७५।
यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः। द्रोणे सधस्थमश्नुषे॥ साम ७८५।

२. क. इदमापः प्रवहत यत्किंच दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वाशेप उतानृतम्॥ ऋक् १-२३-२२
अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। ऋक् १-२३-२५
ख. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। ऋक् १-२३-१९

विज्ञान-मय कोशों को चित् शब्द व्यक्त करता है। प्राण-मन और विज्ञान को देखा नहीं जा सकता, केवल जाना जा सकता है; इसलिए इन्हें चित् कहते हैं। आनन्दमय कोश या कारण शरीर को आनन्द शब्द व्यक्त करता है। क्योंकि इसको न देखा जा सकता है, न जाना जा सकता है। इसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में स्थूल जगत् या प्रकृति सत् है। जीवात्मा, ज्ञान और मनन के कारण सत् चित् है। और परमात्मा या शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह देख ही चुके हैं कि प्रत्येक कोश का सारभूत श्रेष्ठ अंश सोम कहाता है। इस लिए सोम द्वारा सच्चिदानन्द का भी ग्रहण हो सकता है।

वृत्र और अहि

वृत्र, अहि और सर्प पर्याय वाची हैं।[१] यही मध्यकालीन तान्त्रिक युग में कुण्डलिनी शक्ति या Serpentine power कहलाने लगी। इसी के जागरण द्वारा नि, या सहस्रार चक्र में पहुंचने पर आत्मा और परमात्मा का मेल या मिथुन बनता है। इस वृत्र के सिर पर प्रहार करके १०० पर्व वाली के सुषुम्णा मार्ग द्वारा, प्राणायाम की सहायता से सहस्रार में पहुंचता है।[२]

मिथुन का भाव मैथुन है। जहां सहस्रार चक्र में मिलन (मैथुन) होता है उसी को सत्यलोक, विष्णुलोक परमपद, त्रिदिव, नाक, स्वर्ग आदि नामों से संबोधित करते हैं।

अत्यन्त गुप्त गुहा में रहने वाले, अतएव चर्म चक्षुओं से किसी भी तरह न दिखने वाले प्रभु को हृदयान्तरिक्ष में रहने वाला (मातरिश्वा) सोम (प्राण-मन-और चिति) इसे मथ डालता है और दूध में न दिखने वाले मक्खन के समान, प्रभु को मन्थन द्वारा अनुभूति में प्रकट कर देता है।[४]

सोम के अनेक रूप

सर्वोत्पादक सृष्टि कर्ता के रूप में यह सोम पृथिवी तथा द्युलोक को उत्पन्न कर इनके निवासियों में बुद्धि का विकास करके उन्हें पवित्र करता है। संकल्प शक्ति

---

१. अहिं च वृत्रहावधीत्। ऋक् ८-९३-२, वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रं जघन्थ ऋक् १०-१११-६।

२. अयमिन्द्रो मरुत्सखेन्द्रो विवृत्रस्याभिनच्छिरः। वज्रेण शतपर्वणा। ऋक् ८-७६-२।

३. नाके सुपर्णं हृदावेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। यमस्य योनौ॥ ऋक् १०-१२३-६।

४. गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति। ऋक् १-१४१-१

के प्रतीक अग्नि, सुख और प्रकाश के प्रसारक सूर्य, अन्न प्रदाता इन्द्र और सर्वत्र व्याप्त विष्णु का भी यही उत्पादक है।[१]

देवताओं में ब्रह्मा, कवियों में उशना (आदर्श रूप), ज्ञानियों में ऋषि, पशुओं में महिष, पक्षियों में श्येन, और भक्तों में आत्म संतुष्ट के समान यह स्नातक (सोम) पवित्र वेदी पर व्याख्यान देकर अन्य सब विद्वानों को मात दे देता है।[२]

सोम के वरेण्यमद का पान करने वाला इन्द्र (श्रेष्ठ जन) अपनी सब विषय-वासनाओं को इस तरह समाप्त कर देता है कि वे पुन: आक्रमण करने का नाम ही नहीं लेतीं।[३]

यह सोम वासक तत्वों का स्रोत है। सोम पान भय को भगा कर अभय बनाता है। सोम पान करने वाला अपने दुरितों और विघ्नों को भगाने में समर्थ हो जाता है।[४]

यह सोम धन्य बनाने वाले पदार्थों (धनों) और वासक तत्वों का प्रदाता है। इस सोम का जहां आदर और रक्षण होगा, वहां शत्रु पनप नहीं सकेंगे।[५]

क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। वह सज्जन के सब गुणों को नष्ट कर देता है। मनुष्य के क्रोध की तो बात ही क्या, यदि सोम की रक्षा की जाए तो यह दिव्य क्रोध के भी बुरे परिणामों को दूर भगा देता है।[६]

सोम जहां भी रहेगा, वहां परिष्कार हो जाएगा, कोई कमी न रहने पाएगी। शरीर से रोग चले जाएंगे। मन में चंचलता, अशान्ति और क्रोध न रहेंगे। मस्तिष्क में अज्ञान न रहेगा। इससे निकलने वाली किरणें मृत्यु और उसके कारणों को पास नहीं आने देतीं।[७]

---

१. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥ ऋक् ९-९६-५

२. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥ ऋक् ९-९६-६

३. अस्य पीत्वामदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति। जघान जघनच्चनु॥ ऋक् ९-२३-७

४. उत्सोवस्वः। ऋ० ९-९७-४४। अभयानि कृण्वन्। ऋ० ९-९०-४।
अपसेधन् दुरिता। ऋ० ९-८२-२.

५. आनेता वसूनाम, आनेता रायाम्। ऋक् ९-१०८-१३

६. क्रोधो नाशयते सर्वं नहि क्रोधसमो रिपुः।—अवयाता हरसो दैव्यस्य।
ऋक् ८-४८-२

७. परिष्कृण्वन्त निष्कृतम्। ऋक् ९-३२-२। अमृतयवः अस्यकेतवः।
ऋक् ९-७०-१

सोम इन्द्र का प्रिय और सखा है। सदा उसका मंगल चाहता है। यदि सोम पान सुचारु रूप से किया जाएगा तो अभिमान और अहंकार से भी बचा जा सकता है।[८]

सोम पान के द्वारा आनन्द की उत्पत्ति और अनुभूति होती है।[९]

सोम साधना में रत व्यक्ति (सोम) जब प्राणायाम और योग की सहायता से मन का पूर्ण रूप से अधिपति बनकर, दिव्य दृष्टि सम्पन्न होकर चेतनामय (चिति रूप) बन जाता है, तब वह भी परमात्मा की तरह विश्ववित् (सर्वज्ञ) हो जाता है।[१]

इन अन्न-प्राण-मन-विज्ञान-मय कोशों में रहते हुए घने से घने अंधकार को नष्ट करने वाले सूर्य सम शुक्र ज्योति को प्रकट करता है और तदनन्तर **पतिःमदानाम्, मत्सरवान्, मदच्युत, मदिर, मंदिष्ठ, मध्वः, सूद, मन्द्र, स्वर्जित्, स्वर्वित् स्वर्षाः** इत्यादि विशेषणो से युक्त होकर यह सोम ही आनन्द को उत्पन्न करता है, और फिर आनन्द रूप हो जाता है।[२]

यह दिव्य सोम (सूक्ष्म शरीर स्थित मन), पुराने जन्म के संस्कारों के साथ जीवात्मा के साथ स्थूल शरीर में प्रवेश करता है, और जन्म के पश्चात् इन्द्रियों को भोग प्रदान कराता है। यह मन (सोम) ऊर्ध्वगति करता हुआ (पवित्र बनता हुआ) पहिले पापवृत्तियों से और अन्त में वृत्ति मात्र से मुक्त होकर; पवित्रता, चेतना और आनन्द के निरतिशय अधिष्ठान परमात्मा में प्रवेश कर जाता है।[३]

यह सोम ही ज्ञान, शक्ति, प्रगति तथा समृद्धि को देने वाला तथा जीवनयज्ञ (सोम याग) को पूर्ण करने वाला; इस संसार यज्ञ का आत्मा है।[४]

परमात्मा स्वयं कहता है कि यदि तू मेरी मित्रता चाहता है, ताकि अन्तः

---

८. इन्द्रस्य प्रियः। ऋक् ९-९८-६। इन्द्रस्य सखा। ऋक् ९-९६-२।
सुमंगलः। ऋक् ९-८०-३, अभिभातीः सहमानः। ऋक् ३-६३-१५

९. सोमेनानन्दं जनयन्। ऋक् ९-११३-६

१. एष विश्वविन्मन संस्पतिः। ऋक् ९-२८-१

२. पवमान ऋतं बृहत शुक्रं ज्योतिरजीजनत्। कृष्णा तमांसि जंघनत्॥
ऋक् ९-६६-२४

३. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति॥
ऋक् ९-३-९

४. गोषा इन्दो नृषा अस्य श्वसा वाजसा उत। आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥
ऋक् ९-२-१०

और बाह्य सब शत्रुओं का तैरा जा सके, तो सोम की रक्षा कर और मन को ध्यान रूपी आत्मा से वश में कर ले।[५]

यह मन (चित्त) वायु के समान चंचल है, किन्तु यदि इसे ध्यान द्वारा अवात (स्थिर) बना दिया जावे तो संकल्प-विकल्प से आनन्दित, गर्वित और मूढ़ होना छोड़ देता है; नौकर के समान हमें सुख देने वाला और शान्ति प्रदान करने वाला बन जाता है।[६]

सोम या इन्दु मन को भी कहते हैं। क्योंकि मेधावाली इन्द्रिय इसके अतिरिक्त हो नहीं सकती।[७] यह सोम ही ध्यान और भजन के द्वारा पवित्र होकर विघ्नों और दुःखों को नष्ट करता है। दिव्य दृष्टि को खोल कर विश्ववित् बना देता है।

यही सोम विज्ञानमय कोश में, अपनी दुर्वृत्तियों का नाश करके शुद्ध पवित्र होकर ध्यान द्वारा मन को पूरी तरह वश में करके, उसका स्वामी बनकर विश्ववित् बन जाता है, और तदनन्तर सर्व प्रकाशक (सूर्य) परमात्मा के साथ स्थित हो जाता है।[८]

सोम की मित्रता के परिणाम

तेरी मित्रता प्राप्त होने के बाद, हम समर्थ और यशस्वी बनें, सब प्रकार के वैभव का भोग करते हुए सदा आशावादी बने रहें। बार-बार संघटित होकर और सेना बनाकर आक्रमण करने वाले अपने बाह्य और अभ्यन्तर शत्रुओं का प्रतिरोध

---

५. यदि मे सख्यमावरः इमस्य पाह्यन्धसः। येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥
ऋक् ८-१३-२१
अन्धः-अन्नं ध्यानं च। निरुक्त। मनसोऽभ्युदयोनाशः। मनो नाशोभनोदयः। मुक्तिकोपनिषद्

६. तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्। ऋक् १-१६३-११। मनो वै प्राणानामधिपतिः। शत ७-५-२-६। सुशेवो नो मृलयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवानः शं हृदे। ऋक् ८-७९-७।
दृप हर्ष मोहनयोः। शेवृ सेवने।
Mind is the best slave and worst master.

७. सुमेधसमिन्द्रियं सोम धनसा उ ईमहे। ऋक् १०-६५-१०

८. सोमो वनेषु विश्ववित्। पुनानोऽनन्नपस्त्रिधः। एष सूर्येण हासते।
ऋक ९-२७

करके उन्हें परास्त कर सकें।[१]

तेरी मित्रता में चलते हुए और सब ओर से सुरक्षित रहते हुए हमारी एक ही कामना है कि तेरे गुणों को अपने में धारण करके कुछ न कुछ तेरे समान ख्याति पाने वाले सच्चे सखा बन सकें।[२]

हे चन्द्रसम शीतल सोम, तेरी मित्रता मिलने के बाद मैं प्रतिदिन आनन्द में मगन रहूं। मेरी सिद्धि के मार्ग में अनेक विघ्न विचरते रहते हैं, उनसे मेरी रक्षा कर। और यदि मैं समाज, जाति, प्रदेश के छोटे घेरों में फंस जाऊं तो मुझे उनसे निकाल दे।[३]

हे सोम! यदि हममें पाप भावना जागृत हो रही हो तो उससे रक्षा कर, क्योंकि हम तेरे सखा हैं, और तू अपने सखा को कभी दुःखी नहीं होने देता। यदि तू हमारी पाप से रक्षा नहीं करेगा तो उस का फल (दुःख) भोगना ही पड़ेगा।[४]

हे दिव्य सोम! जो मनुष्य तेरी मित्रता में मगन रहता है, समर्थ और सर्वज्ञ प्रभु सदा उसके साथ रहता है, उसे कभी स्वपथ से विचलित नहीं होने देता।[५]

हे सोम राजन्! हम तेरे हैं, इस लिए हमारे अस्तित्व को सुन्दर और शुभ रखते हुए हमें सुख प्रदान कर।[६]

हे इन्दो! तू हमारी वासनाओं को नष्ट करने वाला सच्चामित्र है।[७]

हे सोम यदि हमसे जाने या अनजाने कोई व्रत भंग हो जाए तो सच्चे मित्र की तरह हमें क्षमा कर दे; और हमारी सहायता तथा मार्ग दर्शन करता रह।[८]

१. अस्यते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न[क] उत्तमे सासह्यापृतन्यतः।
ऋक् ९-६१-२९
२. अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः। इन्दो सखित्वमुश्मसि॥
ऋक् ९-६६-१४
३. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे।
पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि॥ ऋक् ९-१०७-१९
४. त्वं न सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत्त्वावतः सखा। ऋक् १-९१-८
५. यः सोम सख्ये तव रारणद् देवमर्त्यः।
तं दक्षः सचते कविः॥ ऋक् १-९१-१४
६. सोम राजन् मृलया नः स्वस्ति तव स्मसि। ऋक् ८-४८-४
७. त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा। ऋक् १०-२५-९
८. यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृड सुषखा देव वस्यः। ऋक् ८-४८-९
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव। ऋक् ९-१०४-५
क. द्युम्नम्——यश, सामर्थ्य, वैभव, उत्साह।

सखा सम्बोधन के द्वारा—सोम के साधक, साधना के मार्ग दर्शक गुरु, और सर्वान्तर्यामी प्रभु में से किसी को भी सोम समझ सकते हैं।

हे सोम ! हमें प्रकाश, ज्ञान और सुख दीजिये। आपके पास अनन्त सौभाग्य हैं; हमें जिस सौभाग्य की आवश्यकता और प्राप्त करने की योग्यता हो, वह देकर अब से उत्कृट बनाइये।[1]

कर्म को दक्षतापूर्वक करने की क्षमता और उसे पूरा करने का दृढ़ संकल्प दीजिये। मुझे दुःख देने के लिए आए शत्रुओं को भगाइये।[2]

आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ बनाने वाला ऐश्वर्य प्रदान कीजिये। बुद्धि और धन तथा प्रकाश और सुख दीजिये।[3]

हे सोम, आप सर्वज्ञ (कविः) तथा सब को प्रगति द्वारा पवित्रता देने वाले (पवमान) हैं। इसलिये हृदय में बैठकर अपनी प्रेरणा द्वारा हमारे दुःख, दोष और दुरितों को दूर कीजिये।[4]

सोम से प्रार्थनाएं

हे पवमान ! हमारे पास या दूर रहकर जो शत्रु भयभीत करता है, उसे मार दीजिये। हमारा दृष्टिकोण उदार बनाइये और निर्भय कीजिये। हमारे अन्दर प्रविष्ट द्वेष भावना को दूर करने के साथ साथ हमारे द्वेषी दुष्टों तथा उन में छिपी द्वेष-भावना को भी नष्ट कर दीजिये।[5]

---

१. सना ज्योतिः सना स्वः विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि। ऋक् ९-४-२
२. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि। ऋक् ९-४-३
३. अभ्यर्ष सोम स्वायुध द्विवर्हं संरयिम्। ऋक् ९-४-७ सना मेधां सना स्वः। ऋक् ९-४-९
४. त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर। कविः सीद निर्बर्हिषि। ऋक् ९-५९-३
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वितज्जहि॥ ऋ० ९-६७-२१
जहि शत्रुमन्तिके दूरके चय उर्वी गव्यूतिमभयं च न स्कृधि॥ ऋ० ९-९८-५।
आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्व दर्शत। अस्मभ्यं सोम गातुवित्॥ ऋ० ९-६५-१३
५. इनु द्वेषांसि सध्र्यक्। ऋक् ९-२९-४

तेरे द्वारा किये हुए यज्ञ और योग द्वारा प्राप्त रक्षा और वृद्धि की सहायता से हम दीर्घ आयु तक सूर्य दर्शन में समर्थ बने रहें।[६]

हमारे लिये समृद्धि के द्वार खोल दीजिये। हम जहां जाएं, वहां प्रकाश और यश की ज्योति जगमगाती हो। हमारे चारों और सुख व शान्ति की वृष्टि कीजिये।[७]

हे सदा पवित्र तथा सबको प्रगति द्वारा पवित्र करने वाले पवमान प्रभो! जहां अजस्र ज्योति और सतत आनन्द प्रवाहित रहता है, वहां स्वतः धारण-पोषण (स्वधा) होता रहता है, इसलिये सदा तृप्ति रहती है। जहां आनन्द मोद मुद और प्रमुद स्वयं प्रसृत हैं, सब कामनाएं स्वयं प्राप्त हैं; उस अक्षय अमृत लोक में मुझे पहुंचा दो। यह लोक कोई स्थान न होकर स्थिति है। इसी को त्रिनाक या त्रिदिव लोक कहते हैं।[८]

हे सोम राजन्! आप सर्व समर्थ (सह-उमया) और पूर्ण दीप्त हैं (राजृ दीप्तौ) अपनी परिपक्वहवि—सार भाग (पीयूष या अमृत) से हमारी रक्षा कीजिये जिससे हमारे किसी कोश या शरीर में कोई शत्रु न पहुंच पाएं और किसी आधि-व्याधि से हमें निराश या भयभीत न कर सके। ऋतवाक, सत्य, श्रद्धा और तप से सुत सोम द्वारा आनन्दित कीजिये, जिससे हम अभय ज्योति का सेवन करते हुए अक्षय लोक में निवास करते रहें।[९]

---

६. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्। ऋक् ९-४-६

७. विनो राये दुरो वृधि। ऋ० ९-४५-३ उरु ज्योतींषिसोम। ऋ९-९१-६ वृष्टि नो अर्षं दिव्याम्। ऋक् ९-७९-१७

८. यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन्मां धेहि पवमानामृतेलोके अक्षिते॥ ऋक् ९-११३-७।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्रमामृतं कृधि। ऋक् ९-११३-१०।
यत्रानन्दाश्च मोदाश्चमुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामा स्तत्र मामृतं कृधि॥ ऋक् ९-११३-११।
त्रिनाके त्रिदिवे दिवः यत्रानुकामं चरणम्।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्रमामृतं कृधि। इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ऋक् ९-११३-९

९. यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरक्षतः।
अरातीवा मानस्तारीन्मोचनः किंचानममत्। इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ऋक् ९-११४-४

यह लोक कोई स्थान नहीं, मानसिक (आन्तरिक) स्थिति है। क्योंकि एक व्यक्ति स्वर्ग तुल्य स्थान और परिस्थितियों में रहता हुआ भी, अपनी दुःखद मानसिक स्थिति के कारण नरक में निवास करता है और दूसरा नरक तुल्य गन्दी तथा अस्वस्थ परिस्थित में रहता हुवा भी अपनी स्वस्थ एवं आशावादी आन्तरिक स्थिति के कारण स्वर्ग या अमृत लोक में निवास करता है।

उपसंहार

सोम सवन या सोम पान देवताओं का दैनिक नित्यकर्म है। सोम रस देवताओं का प्रिय पेय है। इसलिये वे इसकी अधिक से अधिक रक्षा करते हैं। सोम भाग या सोम साधना के द्वारा देव साधक सूर्य के समान तेजस्वी तथा देदीप्यमान हो जाते हैं। उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिस की सहायता से अत्यन्त गुप्त हृदय गुहा में अन्तर्हित अतएव सामान्य जन द्वारा अदृष्ट अपने प्रिय सखा को अवात (निश्चल) मनश्चक्षु द्वारा सच्चि दानन्द रूप में साक्षात् देखते हैं; क्योंकि इस सोमयाग द्वारा वह उनके साथ (सधस्थ) एक आसन पर स्थित हो जाता है।[२]

सधस्थता का अर्थ एक स्थान में बैठना नहीं है, क्योंकि परमेश्वर के सर्व व्यापक होने से उसकी सधस्थता तो सर्वथा असिद्ध है। इसलिये यहां सधस्थता का अर्थ समान स्थिति-समान गुण-समान ख्याति-सखा भाव करना चाहिये। इस सखा-भाव की उच्च अवस्था में ही आत्मा 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने का अधिकारी बनता है। और 'अहं सूर्य इवाजनि' के समान इसका अर्थ होता है 'अहं ब्रह्म इवास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म के समान बन गया हूं।

इस प्रकार वेदों में सोम देवता शब्द से—एक औषधि, औषधि का रस, प्रत्येक शरीर का सार भाग-वीर्य, प्राण और आनन्द, कर्त्ता के रूप में परमात्मा, जीवात्मा, राजा, सेनापति, गुरू इत्यादि, कर्म के रूप में जगत्, भोग्य वस्तु, पदार्थ मात्र अन्न आदि और भोक्ता के रूप में जीवात्मा शरीर, प्रज्ञा, सेना, शिष्य इत्यादि का और प्रत्येक क्षेत्र में सार भूत या श्रेष्ठ वस्तु का ग्रहण किया जा सकता है। इसलिये वेद का भाष्यकार कहता है। 'सर्वं हि सोमः' सोम ही सब कुछ है।

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत। ऋक् ९-११३-२
सोमेनानन्दं जनयन्। ऋक् ९-११३-६। तस्मिन्माधेहि पवमानमृते लोके अक्षिते। ऋ ९-११३-७

२. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्। सूरः पश्यति चक्षसा॥ ऋक् ९-१०-९।
प्राणो यज्ञस्याध्वर्युः। जै० १-८५। मनोऽध्वर्युः। शत १-५-१-२१
क्रत्वा सधस्थमासदत्। ऋक् ९-१६-४

महात्मा

—रत्नकान्त बरकाकति—

तुम स्वयं जीवन्त कविता हो महात्मा
काव्य तो है क्षीण ध्वनि केवल हृदय की
जो महत् की खोज में
त्रिभुवन-विफल सन्धान-रत है
किन्तु तुम तो मर्मवाणी देश की हो
कोटि कवियों का सतत वन्दन
तुम्हारे निकट नत है।
तुम समय से हीन और नवीन नित्य-विधानदाता
प्राण संचारी
पतित हम डूबतों की शक्ति, त्राता।
मुक्तिदाता पार करके पाप श्रेणी
सभ्यता के अगम अति ऊँचे शिखर
पूर्णिमा के शशि-निकट तुम इस धरा पर
भर रहे हो ज्वार जन-गण-मन जलधि में
जिस अवधि में जहाँ मानव मिटा देता मर्त्य-सीमा
दिव्य महिमा तुम्हारी दीपित वहीं पर है असीमा।

[असमिया से अनूदित]

कीर्तिर्यस्य स जीवति

आचार्य सुरेन्द्र देव स्नातक,
पी-एच० डी०

वस्तुत: संसार में जन्म लेना उसी का सार्थक कहा जा सकता है जिसकी उत्पत्ति से समाज का कल्याण एवं राष्ट्र का उत्थान हो, जिसके कार्यों से चारों ओर उसकी यश: पताका सदैव लहराती रहे, जिसका जीवन एवं कार्य मानवमात्र के कल्याण के द्योतक हों। ऐसे महा पुरुष संसार में सदैव जीवित रहा करते हैं। यह दूसरी बात है कि उनका भौतिक शरीर नष्ट हो चुका हो। किन्तु फिर भी वे अपने यश: शरीर से संसार में अवश्य जीवित हैं।

ऐसे ही महापुरुषों में से एक महात्मा हंसराज भी थे।

त्यागमय जीवन के धनी

महात्मा हंसराज ने जिस परिवार में जन्म लिया था वह परिवार एक सामान्य स्तर का परिवार था। बी० ए० उत्तीर्ण कर लेने पर उनके विषय में लोगों की यह पक्की धारणा बन गई थी कि अब यह व्यक्ति अपने परिवार का उत्थान करेगा। तत्कालीन ब्रिटिश शासन में उत्तम से उत्तम अधिकारी के स्थान पर उनकी नियुक्ति हो सकती थी, क्योंकि उस समय एक तो शिक्षितजनों की संख्या ही स्वल्प थी और फिर बी० ए० उपाधिधारी स्नातक तो बहुत ही थोड़े थे। ऐसी स्थिति में वे उत्तम से उत्तम शासकीय सेवा प्राप्त कर सकते थे, किन्तु उनको तो मात्र अपने परिवार के ही उत्थान की चिन्ता न थी, वे तो समग्र समाज एवं राष्ट्र का ही उत्थान करना चाहते थे। परिणामस्वरूप उन्होंने परिवार का सम्पूर्ण भार अपने बड़े भाई को सौंप दिया और स्वयं लग गये अपने लक्ष्य की पूर्ति में।

सन् १८८५ ई० में लाहौर में डी० ए० वी० हाई स्कूल की स्थापना की गई। इसके सुचारु रूपेण संचालन के लिये कोई सुयोग्य प्रधानाध्यापक उपलब्ध नहीं हो रहा था। महात्मा हंसराज ने इस उत्तदायित्व को स्वयं ही संभाला तथा आनरेरी रूप से उक्त पद का भार ग्रहण किया। उन दिनों गवर्नमेण्ट स्कूल लाहौर का प्रधानाध्यापक था एक अंग्रेज जिसका नाम था 'स्टेन'। उसने

हंसराज जी के बारे में कहा कि यह पगड़ी वाला मूर्ख क्या स्कूल चला सकेगा। महात्मा जी ने उसकी इस चुनौती को स्वीकार किया। साथ ही अपनी योग्यता, त्याग एवं तपोमय जीवन के साथ ही अपनी अनुपम कार्यकुशलता से उक्त अंग्रेज के कथन को असत्य सिद्ध कर दिया। उनके अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप उस हाई स्कूल ने अतिशीघ्र ही कालेज का रूप धारण कर लिया। भारत के विभाजन से पूर्व यह डी० ए० वी० कालेज भारतीय कालेजों में सर्वश्रेष्ठ था तथा एक विश्वविद्यालय का रूप धारणा कर चुका था।

इस भांति उन्होंने सर्वप्रथम अवैतनिक मुख्याध्यापक के रूप में कार्य करने का आदर्श स्थापित किया। वे कालेज कमेटी से एक पैसा तक न लेते थे तथा इतनी लगन और प्रेम के साथ कार्य किया करते थे कि वेतन भोगी अध्यापक आश्चर्य किया करते थे। उन्होंने अपनी योग्यता, सादगी तथा उच्च विचार की भावना से ओतप्रोत अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय जन भी उत्तम शासकीय योग्यता रखते हैं तथा किसी भी महत्वपूर्ण पद का भार निभा सकते हैं।

शिक्षा जगत् में उनके द्वारा किये गये इस कार्य का भारतीय जनों पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण भारत में अनेक डी० ए० वी० स्कूलों, इण्टर कालेजों तथा डिग्री कालेजों की स्थापना हो गई। इस प्रकार की प्रेरणा के स्रोत महात्मा हंसराज ही थे।

महान् कर्त्तव्यनिष्ठ

वे अपने कर्त्तव्य के पालन में सदैव दत्तचित्त रहा करते थे। कर्तव्य से रत्ती भर भी पराङ्मुख होने की भावना उनके हृदय में कभी नहीं आई। जब वे हाईस्कूल के मुख्याध्यापक पद पर आसीन थे, तब एक दिन घोर वर्षा हो रही थी। स्कूल खुलने का समय हो रहा था। वे समय पर स्कूल पहुंच जाने के लिये उत्सुक थे। किन्तु न तो उनके पास बरसाती कोट ही था और न ताँगे में जाने के लिये पैसे ही। किन्तु कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा होने के नाते वे बारिश में ही चल पड़े और निश्चित समय से दो मिनट पूर्ण ही विद्यालय में पहुंच गये।

उनके जीवत-काल में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिनसे उनकी महान् कर्तव्य-निष्ठा एवं जन-सेवा का परिचय मिलता है।

वास्तविकता तो यह है कि जिसको सच्ची लगन होती है वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफलता प्राप्त करता है।

ऋषि दयानन्द के भक्त

वे ऋषि दयानन्द के अनय भक्त थे। उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल कर स्वयं जीवन का उत्थान करने के साथ ही वे जाति का उत्थान भी करना चाहते थे। वे कहा करते थे कि आर्यसमाज का प्रधानतम उद्देश्य है समस्त विश्व का उपकार करना। इस उद्देश्य की पूर्ति में ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया।

ऋषि के कथानुसार 'आर्यसमाज' तो आर्यजनों का एक संगठन है। यह समाज जिस धर्म में विश्वास करता है वह है "वैदिक-धर्म"। इस वैदिक धर्म के प्रचार में ही ऋषि ने अपना जीवन अर्पण कर दिया था किन्तु दुर्भाग्य से उन्हें इस लोक से शीघ्र ही जाना पड़ा। परिणाम—उनके द्वारा संचालित सभी कार्य अधूरे ही रह गये।

इन अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का महात्मा हंसराज जी ने व्रत लिया और वे सभी प्रकार से उनकी पूर्ति में जुट गये। आर्यसमाज से सम्बन्धित ऐसा एक भी कार्य न था जिस की ओर उनकी दृष्टि न गई हो, उनका पग न बढ़ा हो तथा उस कार्य का सफलता पूर्वक सम्पादन न किया हो। उन्होंने शुद्धि-आन्दोलन, अछूतोद्धार तथा हरिजनों की उन्नति में सदैव अपना प्रशंसनीय योगदान किया। उन्होंने आर्य-प्रादेशिक सभा तथा महिला महाविद्यालय की भी स्थापना की। शिक्षा जगत् में तो उनका महान् एवं अनुकरणीय सहयोग सदैव उपलब्ध होता रहा।

'दर्शन दीजिये, गाड़ी भेज रहा हूं"

गरीबों एवं दुःखीजनों की सेवा, विधवाओं एवं अनाथों के लिए आश्रमों की स्थापना आदि की ओर भी सदैव उनका ध्यान रहा। आर्यसमाज का कार्य करना ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन गया था। उसी को वे सदैव प्रमुखता प्रदान किया करते थे। एक बार की बात है कि जब वे श्रीनगर (कश्मीर) के उत्सव में गये हुये थे, उनके समीप महाराजा प्रतापसिंह का संदेश आया—"दर्शन दीजिये, गाड़ी भेज रहा हूं"। महात्मा जी ने कहलवा दिया कि "मैं जिस कार्य के निमित्त यहा आया हूं उसे पूरा कर लूं। तदनन्तर ही मैं दर्शनार्थ उपस्थित हो सकूंगा।" आर्यसमाज के उत्सव की समाप्ति पर महाराज ने पुनः उन्हें लाने के लिये सवारी भेजी। महात्मा जी महाराजा के समीप पहुंचे। महाराजा से उनसे पूछा कि 'ऐसा कौनसा कार्य था जिसे पूरा किये बिना आप यहां आने में असमर्थ थे ?" उन्होंने स्पष्ट उतर

दिया—"आर्यसमाज की सेवा"। यह सुनकर महाराज ने कहा कि "आपने तो अपना सम्पूर्ण जीवन ही इस पवित्र कार्य में लगा दियाहै, धन्य हैं आप।"

उनका सिद्धान्त था कि अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी एवं सत्यता के साथ पालन करना ही 'तप' है। इस सिद्धान्त के वे स्वयं ही सबसे बड़े पोषक थे। उन्होंने एक बार अपने भाषण में कहा भी था:—

"मानव-जीवन का एक ध्येय होना चाहिये, एक केन्द्र, जहां पहुंचकर वह अपना जीवन कुर्बान कर सके, अपनी धन-दौलत और बाल-बच्चों को आसानी से छोड़ सके। एक स्थान होना चाहिये, जहां पहुंचकर गर्व के साथ वह कह सके कि चाहे प्राण चले जायं, चाहे सब ओर से विनाश का ताण्डव घेर ले, पर वह उस स्थान से लौटेगा नहीं, पीछे नहीं हटेगा। ऐसे ही स्थान पर मानव का वास्तविक चरित्र और उसका वास्तविक मोल होता है"।

इस सिद्धान्त को उन्होंने अपने जीवन में पूर्णरूपेण ढाला था। इसी का पालन करते हुये वे वैदिक-धर्म के सच्चे अनुयायी बन सके थे।

वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का पालन कर उन्होंने अपना जीवन अनुकरणीय बनाया था। ऐसे महापुरुष के जीवन से हम सभी को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

उनका स्मृति-दिवस हम प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से मनाया करते हैं किन्तु सत्यरूप में इस दिवस का मनाना तभी सार्थक कहा जा सकेगा जब हम उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन का भी तदनुकूल निर्माण कर सकें, तथा मानवमात्र के कल्याण की ज्योति को अपने अन्तस् में प्रज्वलित कर सकें।

पता—जगदीशपुर
बलिया (उ० प्र०)

मुनि को ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त थी कि वे जो कहते, वही होकर रहता। जिसका विवाह न हुआ हो, उसका विवाह हो जाता, जिसके सन्तान न हो, उसके सन्तान हो जाती। ऐसे मुनि को लोग साक्षात् भगवान् का अवतार न मानें, तो क्या मानें।

एक सेठ के घर में चोरी हो गई। सेठ मुनि की शरण में पहुंचा और मुनि ने 'दिव्य दृष्टि' से चोर को पकड़वा दिया। पर तभी पुलिस बीच में आ कूदी, और......

एक मलयाली लेखक की हिन्दी में लिखी रोचक रचना

दिव्य दृष्टि ?

के० ए० प्रभाकरन (एम. ए.)

एक पीपल के वृक्ष के नीचे एक मुनि तपस्या कर रहे थे। लंबा शरीर, गोरा रंग, विशाल ललाट, कमल जैसे विलोल नयन, मूंछें और दाढ़ी घने बादलों के समान काली। वह हमेशा भस्म और रुद्राक्ष धारण करते। हमेशा रामनाम जपते रहते। कभी-कभी ध्यान में निमग्न बैठते। वहां एक तपोवन सा दिखाई पड़ता था।

गांव के सारे लोग मुनि का आदर करते थे। एक दिन एक लड़की रोती चिल्लाती मुनि की शरण में आयी। वह कहने लगी—"महाराज, आप मेरी रक्षा करें। कई दुश्मन मुझको पकड़ने के लिए आ रहे हैं।"

ध्यान से मुक्त हो कर मुनि ने देखा कि सामने एक किशोरी खड़ी है। आँखें प्रसारित कर मुनि ने कहा—"वत्स ! तुम रोओ मत। निकट भविष्य में तुम सुहागिन हो जाओगी। तुम्हारा पति एक अच्छा आदमी होगा।"

थोड़ी देर तक वह लड़की आश्रम में बैठी रही। लेकिन कोई उसको पकड़ने के लिए नहीं आया। मुनि से आशीष पाकर वह लड़की वहाँ से निकली। रास्ता

अच्छा न था। पगडंडियों से घर पहुंचना था। विजन प्रदेश भी था। आधे रास्ते तक पहुंचने पर कुछ लोग लड़की के पास पहुंचे। वे लोग उसे पकड़ कर अपने अधीन करने की कोशिश करने लगे। लड़की रोने लगी। उस समय उस रास्ते से एक पुलिस की टोली आ रही थी। पुलिस ने लड़की की आवाज सुनी। वह जल्दी वहां पहुंच गई। एक युवक लड़की को जवरदस्ती पकड़कर आलिगन कर रहा था। पुलिस को देख कर सारे लोग डर कर भाग गए। पुलिस ने उस युवक को कैद कर लिया। दोनों को थाने पहुंचाया। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि लड़की एक गरीब परिवार की है और युवक उस गांव के मालिक का इकलौता वेटा है। पुलिस ने लड़की और लड़के के पिताओं को बुलवाया और थाने पर ही दोनों का विवाह करा दिया।

दूसरे दिन पति और पत्नी (लड़की और युवक) अपने हाथों में फूलों की माला लिए मुनि महाराज के पास पहुंच गए। भगवान् के सामने भक्त के समान अत्यन्त विनम्र वाणी से लड़की बोली—महाराज ! ले लीजिए यह फूलों की माला। ये मीठे फल आपको अमृत के समान रुचि कर हों। आपकी कृपा और आशीष से मैं सुहागिन वन गई हूं। कल मैं वहुत डर गई थी। मैं आपत्ति में पड़ गई थी। लेकिन उस समय केवल एकमात्र आपकी कृपा से मेरी रक्षा हुई। इसलिए मैं आपकी दासी हूं। मेरे और मेरे पति की रक्षा आप करें। पिता के समान आप हमारे लिए आदरणीय हैं। अपनी सन्तान समझ कर आप हमारी रक्षा करें।"

ध्यान से मुक्त हो कर मुनि ने लड़की और युवक को देखा और गंभीर मधुर स्वर से कहा, "वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। मैने सब कुछ दिव्य-दृष्टि से देख लिया है। भगवान् की कृपा से तुम्हारी रक्षा हुई। तुम दोनों चिरंजीवी रहो। शुभ कामनाएं।" मुनि पुनः ध्यान में लीन हो गए।

अब गाँव वाले समझ गए कि मुनि में असाधारण शक्तियाँ है। मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिए जिस प्रकार लोग जाते हैं उसी प्रकार मुनि के दर्शन के लिए लोग आने लगे। मुनि बहुत कम बोलते थे। एक दिन गर्भवती युवती से मुनि बोले कि निकट भविष्य में तुम एक सुन्दर लड़की को जन्म दोगी। कुछ दिन बाद उस युवती को प्रसव हुआ। लेकिन लड़की नहीं, एक लड़का था। संशय दूर करने के लिए युवती का पति मुनि के पास जा कर बोला, "महात्मन्! आपकी कृपा से मेरी पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया। लेकिन आपने कहा था कि लड़की पैदा होगी, इस फेर का कारण क्या है ?"

आंखें आकाश की ओर उठा कर यत्किंचित् चिन्ता में डूबकर मुस्कराते हुए गम्भीर भाव से मुनि ने कहा—"वास्तव में लड़की का जन्म सम्भव था। मेरे आशीष से लड़का पैदा हो गया। वत्स ! तुम्हारा और बच्चे का भविष्य उज्ज्वल होगा।"

एक आदमी को बुखार हुआ। वह मुनि के पास पहुंचा। मुनि ने थोड़ी-सी भस्म (राख) किसी मन्त्रजाप के साथ दे दी। दूसरे दिन सवेरे उस आदमी का बुखार दूर हो गया।

गांव वाले मुनि को अपने पिता के समान मानने लगे। वे सब मुनि पर पूरा विश्वास करने लगे।

एक दिन रात में उस गांव के एक अमीर के घर में चोरी हुई। दूसरे दिन सवेरे पुलिस स्टेशन पर जाने के बदले वह अमीर मुनि के पास पहुंचा और हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज ! मेरे घर में चोरी हुई है। आप कृपा कर दिव्य-दृष्टि से उस चोर को देखिए और मुझे बताइए कि वह कौन है !"

थोड़ी देर तक मुनि ध्यान में बैठे रहे। फिर बोले—"वत्स ! चोर को मैंने समझ लिया। सोने के आभूषण की चोरी हुई है। लेकिन सब कुछ तुम्हें वापस मिलेगा। कल तुम एक हजार रुपए लेकर आओ।"

अमीर बड़ी प्रसन्नता से थाने में पहुंचा और इन्स्पेक्टर साहेब से कहा—"बाबू जी, मेरे घर में कल एक चोरी हुई थी। मेंने मुनि महाराज से विनती की कि आप कृपया मेरी रक्षा करें। उन्होंने दिव्य-दृष्टि से चोर को देख लिया है। कल बताएंगे। कल आपको भी आश्रम में आना चाहिए। उस चोर को पकड़ कर उसे दण्ड देना चाहिए।"

इन्स्पेक्टर साहब आश्चर्यचकित होकर बोले—".. दिव्य-दृष्टि...चोर...कल...

दूसरे दिन सवेरे पीपल के वृक्ष के पास लोगों की भीड़ बढ़ गई। सारे लोग उत्सुकता से मुनि की ओर देख रहे थे। एक आदमी ने कहा—"आज चोर पकड़ा जाएगा।" दूसरे ने कहा—"उस चोर का कचूमर निकालना चाहिए।" तीसरे ने कहा—"मुनि महाराज की दिव्य-शक्ति ही आज हम देखेंगे।" चौथे ने कहा—"अगर वह चोर मेरे सामने आवे तो मैं उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ डालूंगा।"

पुलिस भी उधर पहुंच गई। अब सब लोग मुनि की ओर देखने लगे। समय सवेरे नौ बजे। मुनि ने ध्यान से मुक्त हो कर भीड़ की ओर देखा और गंभीर वाणी ने बोले—"अरे ! चोरो ! मैंने अपनी दिव्य-दृष्टि से तुम्हें देख लिया है। तुम जल्दी ही इधर आओ।"

एक एक आदमी एक दूसरे के मुख की ओर ताकने लगा। हर एक विश्वास कर रहा था कि अभी चोर निकल आएगा, अभी आएगा। किन्तु कोई नहीं आया। मुनि ने कुपित होकर एक गिलास पानी मंगवाया और कुछ मन्त्र जप कर इधर-उधर छिड़कने लगे। तत्काल भीड़ से एक पन्द्रह वर्ष का लड़का थर थर कांपते हुए मुनि के पास आया। वह चिल्लाते हुए मुनि से बोला—"महाराज! (हाथ जोड़ कर) मुझे क्षमा करें। मैंने अज्ञान के कारण चोरी की थी। सारे आभूषण और रुपए मैं वापस लाया हूं। कृपा करें।"

मुनि गंभीर होकर बोले—"तुमने झूठ कहा है। पचास रुपए तुमने खर्च किये हैं।"

"जी हाँ, महाराज! वह मैं भूल गया था।"

बालक ने अपनी थैली से सोने की चार मालाएं और रुपयों का एक बड़ा बंडल मुनि के पास रखा और विनम्र भाव से दूर खड़ा हो गया।

अमीर को बड़ा सन्तोष हुआ। वह मुनि के पास जाकर बोला—"महाराज! ये सब मेरी चीजें हैं।"

"वत्स! ये सब तुम्हारा धन है। ले लो! पर एक हजार रुपए यहाँ रखो।"

"एक हजार नहीं, दो हजार दे सकता हूं"—कह कर अमीर ने रूपयों का एक बड़ा बंडल मुनि के पास रखा।

सारे लोग यह दृश्य देख कर चकित रह गए थे। लेकिन पुलिस ने आगे बढ़ कर बालक को पकड़ लिया।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"संकोच और आश्चर्य करते हुये मुनि की ओर देखकर बालक ने कहा—विजय?"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"मेरा घर उस अमीर के घर के पास है जहाँ से मैंने चोरी की थी।"

"पिता का नाम क्या है?"

"कृष्णदेव।"

"उसका काम क्या है?"

"काम कुछ नहीं, एक किसान है।"

इन्स्पेक्टर साहब अब कुछ पूछने लगते कि मुनि ने बीच में कहा—"बेटा ! तुम इधर आओ। सब कुछ मैं दिव्य-दृष्टि से देख रहा हूं। उसकी मां बीमार—।"

"अगर आप सब कुछ दिव्यदृष्टि से समझने वाले हैं तो बताइए कि मेरे घर में कितने आदमी हैं, उनका नाम क्या और उम्र कितनी है ?" इन्स्पेक्टर साहब का यह प्रश्न सुनकर मुनि चौंक गये। वह ऐसे बैठे मानों कोई ध्यानस्थ महर्षि हो। न हिले न डुले। आंखें मूंद कर वह ब्रह्मध्यान में लीन हो गये।

इधर सारे लोग मुनि महाराज की तारीफ कर रहे थे। लोग कहते थे कि वे भगवान् के अवतार है। एक ने कहा—"अगर वे चाहेंगे तो मृतक को भी जीवित करेंगे।"

इन्स्पेक्टर साहब ने कुपित होकर लड़के को पकड़ कर तीन चार थप्पड़ जड़ दिये। लड़का रोने लगा। वह बोला—"बाबू जी ! मेरी रक्षा कीजिये। मैंने चोरी नहीं की है।"

इन्स्पेक्टर साहब की त्यौरियां चढ़ गईं। मूंछों पर ताव देकर विजय को फिर मारा और कहा—"अगर तुम सत्य बताओगे तो तुम्हारी रक्षा करूंगा। वरना तुम्हारी हड्डियां तोड़ दूंगा।"

इसी बीच ध्यान से मुक्त हो कर मुनि बोले—"वत्स ! तुम इधर आओ। चाहे पुलिस या फौज आवे, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।"

विजय मुनि के पास जाने लगा। किन्तु इन्स्पेक्टर ने उसे रोक कर कहा—"विजय, तुम सत्य बताओ।"

"बाबू जी ! मेरी रक्षा कीजिये। मैंने चोरी नहींकी; किन्तु......"

मुनि महाराज अशान्त हो उठे और आंखें लाल कर इन्स्पेक्टर से बोले—"वत्स ! तुम हमारी राह मत रोको। हम दिव्य-दृष्टि से......"

"उफ् दिव्य-दृष्टि ! मेरे घर में कितने लोग हैं यह दिव्य-दृष्टि नहीं बता सकती। किन्तु मैं अपनी दिव्य-दृष्टि से सच्चे चोर को देख रहा हूं।

उछल कूद कर विजय ने कहा—"बाबू जी ! आपने जी ! आपने ठीक..."

इसी बीच मुनि महाराज भीड़ की ओर जाने लगे। इन्स्पेक्टर ने उनको रोका और बालक से पूछा—"बोलो, सच्चा चोर कौन है ?"

बालक ने कहा—"सच्चा चोर ये मुनिराज हैं। एक दिन मैं गायें चराता इधर आया था। मुनि ने मुझको धनी बनाने का वादा किया। उनके शिष्य तीन-चोर डाकू हैं। हम रात में चोरी करने के लिये जाते थे। पिछले दिन हम सब मुनि

के साथ उस अमीर के घर में गए थे। मुनि ने एक औषधि आग में जला दी और सोने वाले के कमरे में डाल दी। हमने फिर अन्दर प्रवेश कर चोरी की थी।"

इसी बीच अशान्त होकर मुनि ऊपर की ओर देखने लगे। लोगों के मन में उनके प्रति घृणा हुई। एक ने उनकी दाढ़ी पकड़ कर खींची, तब दाढ़ी नीचे गिर गई। इन्स्पेक्टर साहब ने मुनि को पकड़ लिया। मुनि थर थर काँपने लगे।

"हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थी हूं। मैं मुनि नहीं। मेरे बीबी और बारह बच्चे हैं। बी० ए० तक पढ़ा हूं। कोई नौकरी नहीं मिली। अन्त में जीने के लिए यह नाटक......क्षमा......।" इससे अधिक मुनि नहीं बोल सके।

पता—प्राध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज,
पट्टाम्बी, केरल

हमारी शिक्षण संस्थायें और हमारा दायित्व

—शंकरसिंह वेदालंकार—

किसी संस्था की स्थापना जितनी सरल है, संचालन उसका उतना ही कष्ट-साध्य है। जब कोई व्यक्ति राष्ट्र में किसी प्रकार की न्यूनता देखता है तो उसके परिमार्जन और परिष्कार के मार्ग भी अन्वेषित करता है। इसका मूल आधार होता है शिक्षण। अंग्रेजों ने यदि भारत में साक्षरता और शिक्षा का सूत्रपात किया तो उसके मूल में उनका स्वार्थ कार्य कर रहा था। उस स्वार्थ कीपरिपूर्ति में वे सफल भी हुए। महर्षि दयानन्द ने भी भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में एक स्वप्न देखा था और वे चाहते थे कि यह आर्यावर्त पुनः अपनी प्राचीन गुरुकुल परम्परा की ओर उन्मुख हो। इसी कारण उन्होंने गुरुकुल पद्धति की विचारधारा दी।

स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दर्शनानन्द ने इस विचार धारा को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया। आज अनेक गुरुकुल हैं। इन गुरुकुलों का संचालन इतना सरल न था। कलियुग में सयुत्यग, त्रेता औरद्वापर के स्वप्न देखना एक तो वैसे ही हास्यास्पद है और फिर उसको मूर्त रूप देना तो और भी कठिन है। पर जिन तपस्वियों ने स्वप्न भी देखा और उसे मूर्त रूप भी दिया, वे प्रणम्य हैं।

दूसरी ओर महर्षि दयानन्द की स्मृति में डी०ए०वी०संस्थाओं की संस्थापना हुई। इनकी पृष्ठ भूमि में अधुनातन शिक्षा के साथ-२ वैदिक विचारों से छात्रों को अवगत कराना ही था। आज डी०ए०वी० स्कूल, कालेज और उसी पद्धति पर चलने वाली अनेक संस्थायें हैं। एक महर्षि दयानन्द की गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की सरणि है और दूसरी कुछ हट कर उसके विचारों को वहन करने के साथ-साथ अन्य विचाराादि की शिक्षण प्रणाली है। भाव यह है कि आर्यसामाजिक शिक्षण संस्थाओं के दो रूप हैं—एक है गुरुकुलीय प्रणाली और दूसरी है डी०ए०वी० कालेजों की प्रणाली।

उभय दृष्टि से हम सम्पन्न हैं। गुरुकुल भी पर्याप्त हैं और उनका वैभव यदि आकलित किया जाय तो हम लाखों की संख्या को आसानी से पार कर सकते हैं।

डी०ए०वी० कालेज तो और वैभव-सम्पन्न हैं। उपनिषद् में भूमा को सुख की संज्ञा दी गई है। भूमा अर्थात् विस्तार में सुख है। एक नव दम्पति को पर्याप्त समय तक यदि सन्तान न मिले तो उसकी आकुलता बढ़ जाती है। किसी विचारक को यदि उसके अनुयायी न मिलें तो उसे कैसा अनुभव होगा ? किन्तु इस दृष्टि से हम पर्याप्त फले फूले हैं और भूमा के सुख का आस्वाद भी ले चुके हैं।

किन्तु मुझे भूमा के सुख का दर्शन नहीं होता। जिस प्रणाली पर भी विचार करता हूं और उसकी सोद्देश्य सफलता का पर्यवेक्षण करता हूं तो अन्तरात्मा उतना प्रसन्न नहीं होती जितना उसे प्रसन्न होना चाहिए। दोनों पद्धतियों के कर्णधार दुखी हैं। उनका मन विषम स्थिति में पड़कर तड़प रहा है। सच्चा हृदय जिसका भी है वह अपने कृत पर भले ही सन्तुष्ट हो, पर क्रियमाण पर वह असन्तुष्ट है और विवश भी। जैसे किसी व्यक्ति के हाथ से पालित पोषित कीर उड़ जाय; उसी प्रकार की दशा उसकी भी हो गई है।

पर ऐसा क्यों हुआ ? ये दिन हमें क्यों देखने पड़े ? अगर हम आज विवश हैं तो क्यों ? क्या इसके सुधार का भी कोई उपाय है अथवा रोग असाध्य है। अनेक प्रश्न हैं और फिर अनेक उपप्रश्न भी।

उपर्युक्त दुखस्था का कारण क्या है ? हमने संस्थायें तो सैंकड़ों खड़ी कर दीं पर अपनी भावनाओं और उद्देश्यों से दीक्षित व्यक्तियों का निर्माण नहीं कर पाये। वे विचार जिनकी अभिप्रेरणा से इन संस्थाओं का जन्म हुआ था; कुछ थोड़े से आर्यों में ही सिमट कर रह गये। हमने उनका न तो इतना प्रचार किया कि जिससे हमारे उद्देश्यों को समझने वालों की संख्या अधिक होती और न ऐसे प्रशिक्षण संस्थान बनाये जिनमें इन संस्थाओं के शिक्षक, प्राचार्य और अन्यान्य कर्मचारी प्रशिक्षित होते।

ईसाइयों की संस्थायें इस दृष्टि से आगे प्रतीत होती हैं क्योंकि वे अपने प्रशिक्षित और दीक्षित व्यक्तियों के हाथ में ही इनके संचालन का सूत्र रखती हैं। हमारी शिक्षण संस्थाओं के लिए इस प्रकार की प्रशिक्षा और दीक्षा संभवतः आवश्यक नहीं समझी गई। इसी कारण हमारे विचारों और उद्देश्यों का उपहास करने वाले, हमारे आचरणों को निरर्थक समझने वाले और हमारी त्यागी और अपरिग्रही प्रवृत्ति का व्यंग्यात्मक ढंग से अनादर करने वाले लोग आज अधिक संख्या में विद्यमान हैं। इसका एकमात्र हल यह है कि आर्यसमाजी शिक्षण संस्थाओं के प्राचार्य पूर्ण रूपेण मन, वचन और कर्म से आर्यसमाजी हों। प्राध्यापक भी आर्य भावनाओं से भरे हुए हों। पारस्परिक सौहार्द और सौमनस्य से परिपूर्ण हों। संस्थाओं के संचालन के प्रति निष्ठावान् हों। उससे विपरीत विचार को महत्त्व ही न दिया जाय।

विद्यालय और कालेज मन्दिरों की भाँति हैं। इन मन्दिरों में सच्चे पुरोहित रहने अनिवार्य हैं। उनकी अनुपस्थिति में मन्दिर निष्प्राण और जीवन-हीन हो जाते हैं। यदि आर्यमन्दिरों में अनार्य विचारों वाले पुरोहित आ जायं तो क्या आर्यमन्दिरों की प्रतिष्ठा रह सकेगी ?

अतः मेरा आर्यशिक्षण संस्थाओं के संचालकों से निवेदन है कि वे अपनी संस्थाओं का भार आर्य विचारों वाले व्यक्तियों के कन्धों पर ही रखें। इसके लिए वे एक आर्य प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना करें। इस संस्थान में विज्ञान कला और अन्यान्य विषयों में स्नातकोत्तर कक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश दें। उसके व्ययादि का वहन भी प्रवेशार्थी स्वयं करें। प्रशिक्षण की अवधि भी निर्धारित की जा सकती है। प्रशिक्षित होने पर उसकी योग्यता के आधार पर तथा उसकी निष्ठा का पर्यवेक्षण कर उसे समुचित पद पर अधिष्ठित करना चाहिए।

इस संदर्भ में किसी ऐसे व्यक्ति को आगे न लाया जाये जो वांछित योग्यता से वंचित हो। किसी की मिथ्या संस्तुति पर किसी की नियुक्ति न की जाय। नियुक्ति के समय प्रशिक्षण संस्थान के प्रमाण पत्र को वरीयता दी जाय। यदि आवश्यक हो तो प्रशिक्षण संस्थान के प्रमुख से भी अभ्यर्थी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यह तो हुआ भविष्य का हल जिसका प्रबन्ध अबिलम्ब किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में जो आचार्य और प्राध्यापक हमारी संस्थाओं में कार्यरत हैं, उनको आर्यभावनाओं और विचारों से अवगत करवाने के लिए आवश्यकता और सुविधानुसार प्रत्येक विद्यालय और कालेज में समय-२ पर आर्य प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाय। समितियों की ओर से प्राचार्यों को ऐसा निर्देश हो कि वे इसकी व्यवस्था करें और प्रशिक्षण शिविर में आमन्त्रित विद्वानों के लिखित और मौखिक भाषण करवायें, उसका विवरण प्रकाशित कर प्रत्येक को वितरित करें।

वार्षिक पत्रिकाओं में एक धर्म-खण्ड हो जिसमें प्रतिवर्ष अनिवार्य रूप से वैदिक धर्म की उत्तमता और सार्वदेशिकता का उल्लेख किया जाय।

समिति की ओर से आर्यपर्यवेक्षक दल प्रत्येक संस्था में भेजा जाय जो आर्य सामाजिक गतिविधियों का पता लगाये और यह भी देखे कि कहीं झूठे प्रतिवेदन ही तो हमें लिखित रूप से नहीं मिलते। कुछ उसका प्रायोगिक रूप भी है या नहीं, आदि।

जब हम इन भावनाओं से पुनः कार्यरत होंगे तो हमें सफलता अवश्य मिलेगी। यह कार्य संचालक समितियां ही कर सकती हैं। आर्य विद्यापरिषद् के अतिरिक्त एक आर्यधर्म परिषद् भी हो जिसके अन्तर्गत यह कार्य किया जा सके। इस कार्य के क्रियान्वयन के लिए रूप रेखा भी तैयार की जा सकती है तथा संशोधन-परिवर्धन द्वारा परिष्कृत रूप दिया जा सकता है।

आशा है, आर्य शिक्षा शास्त्री और मनीषी इस बात पर गंभीरता पूर्वक विचार कर कुछ अनुकूल निर्णय लेंगे।

पता :--डी०ए०वी०कालेज
सढौरा (अम्बाला)

वेद का
स्वाध्याय कैसे करें ?
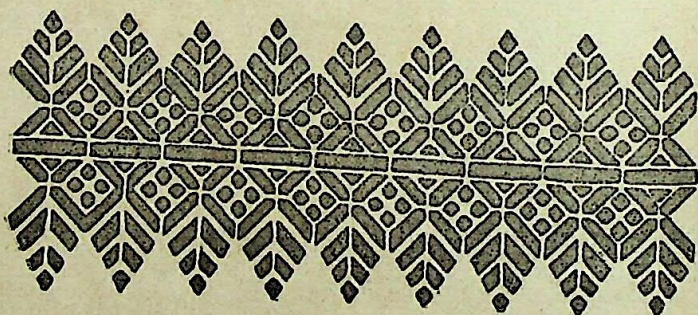
वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

भारतवर्ष की सभ्यता, संस्कृति और धर्ममर्यादा वेद के आधार पर खड़ी है, यह सब जानते हैं। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं' (मनु० २।६) अखिल वेद धर्म का मूल है, यह स्मृति का कथन सत्य है। तथा—

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फला ज्ञेयास्तमोनिष्ठास्तु ताःस्मृताः।। मनु० १२।९६

—"जो वेदबाह्य स्मृतियां हैं, वे सब कुदृष्टियां हैं, वें सब तमोगुण वाली हैं, इसलिए वे सबकी सब निरर्थक हैं।" इतना तीव्र निषेध वेदबाह्य स्मृतियों का मनु ने किया है। वेदवचनों की इतनी उपयोगिता है और वेद विरुद्ध आज्ञा की इतनी निरर्थकता है, इसलिए "वेदों का अध्ययन करना सब आर्यों का परम धर्म है।" क्योंकि वेद में ही श्रेष्ठ मानव धर्म कहा है। देखिए—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।। मनु० १२।१००

—"अर्थात् वेदशास्त्र जानने वाला पुरुष सेना का सर्वोत्कृष्ट संचालन कर सकता है, राज्य-शासन करने का कार्य भी वेदशास्त्रज्ञ कर सकता है। न्यायाधीश का काय तथा सब जनता की उन्नति के कार्य वेंदज्ञ कर सकता है।" मनुस्मृति के समय वेदशास्त्र जानने वालों की यह योग्यता होती थी। आज हम वेद-वेत्ता पंडितों में यह योग्यता नही देखते हैं, यह भी सत्य है। इसका कारण यही है कि वेदाध्ययन की आज वह पद्धतिनही रही जो मनुस्मृति के समय थी। तथापि वेद वही है, जो मनुस्मृति के समयस था। इस वेद में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। पर इन वेद-मन्त्रों से जैसा बो उस समय पढ़ने वालों के हृदय में होता वैसा ही आज नहीं

होता। इसलिए आज हम वेदज्ञ पंडित को सेनापति, राज्य-शासनाधिकारी, न्यायालय का अधिकारी अथवा लोककल्याण के नाना कार्यों की निगरानी करने के लिए नहीं रख सकते। वह विपरीत स्थिति क्यों हो गयी है, इसका विचार करना चाहिए ।

प्राचीन काल में ब्राह्मणों को विशेषतः, और द्विजों को सामान्यतः, वेद कण्ठस्थ करना पड़ता था। चारों वेदों के २२००० मंत्र हैं। प्रतिदिन २५ मन्त्र भी कण्ठ करें तो ३ वर्षों में चारों वेदों के मन्त्र कंठस्थ हो जाते हैं। यह कोई कठिन कार्य नहीं है। आजकल महाराष्ट्रीय वैदिक ब्राह्मण ऋग्वेद को कण्ठ करते हैं। आज भी गुरुकुल में कोई ब्रह्माचारी ८ वर्ष की आयु में वेद कण्ठ करने लगे और प्रतिदिन ५।१० मन्त्र भी कण्ठ करे, तो ५।७ वर्षों में चारों वेद कण्ठस्थ हो सकते हैं। पर इस कार्य को करने की इच्छा आज किसी के हृदय में नहीं है।

यदि सब वेद कण्ठ नहीं करना है, तो कम से कम ५० वार वेदपाठ करना तो सरल बात है ना ? पर यह भी आजकल कोई नहीं करता। प्रति घण्टा ५०० मन्त्रों का पाठ किया जा सकता है। इस हिसाब से दो मास में चारों वेदों का एक बार पाठ हो सकता है। एक बर्ष में छः वार और ४।५ वर्षों में २५।३० बार सहज ही चारों वेदों का पाठ होता है। जिनको वेदाक्षर पढ़ने का अभ्यास नहीं है, उनको प्रथम वार दो गुना समय लगेगा, पर ३-४ बार पाठ करने पर पूर्वोक्त समय में सम्पूर्ण वेद-पाठ हो सकता है। दस बार पाठ होने से छोटे मन्त्र कण्ठ होने लगते हैं और आगे वेद- पाठ सुगम हो जाता है। हमने घड़ी से हिसाव लगाकर देखा है कि घण्टे से ५०० मंत्र पढे जा सकते हैं। ३० बार वेद-पाठ होने से बहुत से मन्त्र स्मरण होने लगते हैं। मन्त्र वचनों का परस्पर सम्बन्ध आप ही आप मन के सामने आने लगता है। केवल पाठ से भी अद्भुत आनन्द आता है। इस आनन्द का वर्णन शब्दों से नहीं हो सकसा। यह आनन्द तो वे ही जानेंगे जो वेद-पाठ करेंगे।

वेद के काव्य की यह विशेषता है कि ठीक स्वर के साथ, अथवा मध्यम एक श्रुत में पठन करने से पाठक का मन तल्लीन हो जाता है। यह तल्लीनता तब आती हैं, जब विना रुके मध्यम स्वर से वेद मंत्रों का पाठ होने लगता है। जिन्होंने वेद कण्ठ किए हैं, उनके लिए तो यह मन की एकाग्रता सहज साध्य होती है। पर जो ग्रन्थ-पाठक होंगे, उनको भी १० वार पाठ होने के पश्चात् एक स्वर में बिना रुके पाठ करने का अभ्यास हो जाता है। तब मन वेद स्वर में एकाग्र होने लगता है और सच्चा स्वरानन्द मिलता है।

जिनको थोड़ा संस्कृत का अभ्यास है, वे तो दस बार के पाठ के पश्चात् बहुत से मन्त्रों का अर्थ भी जानने लगते हैं और २५ बार पाठ होने पर संस्कृतज्ञों

को आधे से अधिक मन्त्रों का अर्थ स्वयं स्फुरण होने लगता है। अर्थात् केवल पाठ भी लगातार और प्रतिदिन करने से वेदार्थ की तथा मानसिक एकाग्रता की दृष्टि से निःसंदेह लाभ होता है।

एक भ्रम

पाठकों में सामवेद के अंकों के विषय में एक भ्रम है। वे समझते है कि साममंत्रों के स्वर गाने के स्वर हैं। पर वास्तविक बात वैसी नहीं है।

प्रत्येक वेद के मन्त्रों का स्वरोच्चारण भिन्न है। ऋग्वेद, वाजसनेयी यजुर्वेद, तैत्तिरीय यजुर्वेद, काण्व यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के वेद-पाठ में भिन्नता है। वह परम्परा से शाखाध्ययन करने वाले जानते हैं। वह लेखन में बताना अशक्य है। सर्वसाधारण के लिए मध्यम स्वर में एक श्रुति से मन्त्र-पाठ करना उचित है। प्रातःकाल में निम्न स्वर से, मध्य दिन में मध्य स्वर से और सायं समय में ऊंचे स्वर से वेद-मंत्र बोले जा सकते हैं। 'सा रे ग' अथवा 'सा म नी' हार्मोनियम के स्वरों के साथ पाठक वेद पाठ कर सकते हैं। साधारण मनुष्य के लिए केवल मध्यम स्वर में मंत्र-पाठ करना उचित है।

राग के आलापों में भी मंत्रों का गान होता है। पर जो अर्थ-ज्ञान के लिए वेद-पाठ करना चाहते हैं, उनके लिए इसकी आवश्यकता नहीं है। वे अपने अनुकूल, कष्ट न हो ऐसे स्वर में वेद-पाठ करें। अपने उच्चारे मंत्र अपने कानों को सुनाई दें, इतना स्पष्ट उच्चारण बस है। जो नाना रागों में वेद-मंत्रों का गान करना चाहते हैं, वे गान विद्या जानने वाले से गान सीखें। यह विद्या गुरुमुख से ग्रहण करने से ही आ सकती है।

अर्थज्ञान के लिए वेद पाठ करने वालों को सामवेद का पाठ करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये मंत्र ऋग्वेद के पाठ से सामवेद का पाठ हो जाता है। ऋग्वेद में जो नहीं हैं ऐसे ७०-८० मंत्र सामवेद में हैं, वे भी शांख्यायन शाखा के ऋग्वेद में प्रायः है। उतने लिखकर पाठ करने से सामपाठ की पृथक् आवश्यकता नहीं रहती। वस्तुतः 'या ऋक् तत् साम' जो ऋग्वेद का मंत्र है, वही आलाप के साथ गाने से सामगान हो जाता है। इसलिए भी सामवेद का पाठ करने की पृथक् आवश्यकता नहीं है।

नित्य पाठ के लिए वेद

वास्तव में नित्यपाठ के लिए चारों वेदों के मंत्र पुनरुक्ति न करते हुए प्रकरण वार छपने चाहिए। इससे करीब १६००० मंत्र नित्य पाठ के लिए मिलेंगे

और प्रतिदिन एक घण्टा वेद पाठ करने से एक महीने में संपूर्ण वेद पाठ हो सकेगा। ऐसी पुस्तक तैयार करने के लिए लिखाई और छपाई मिलकर कम से कम १५००० रु० व्यय होगा और तीन हजार प्रतियाँ इतने व्यय से बनेंगी। अर्थात् ७) रु० मूल्य पर ऐसी नित्य पाठ की पुस्तक लोगों को मिल सकती है।

नित्य पाठ के लिए चारों वेदों के प्रकरण बनने चाहिए, यह पहली बात है। इसी तरह ऊपर मंत्र, बीच में पदपाठ और नीचे अन्वय—ऐसी वेदों की पुस्तक छापकर तैयार करनी चाहिए। उदाहरण के लिए एक मंत्र यहां हम देते हैं—

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा। शमस्य च शृंगिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनां अरान् न नेमिः परिता बभूव॥
ऋ० १।३२।१५

पदपाठ—इन्द्रः। यातः। अवसितस्य। राजा। शमस्य। च। शृंङ्गिणः। वज्रऽबाहुः। सः। इत्। ऊं (इति)। राजा। क्षयति। अरान्। चर्षणीनां। न। नेमिः परि ता। बभूव॥

अन्वय पाठः– वज्रबाहुः इन्द्रः, यातः अवसितस्य, शमस्य, शृङ्गिणः च, राजा (अस्ति)। सः इत् उ चर्षणीनां राजा (भूत्वा) क्षयति। ता (तानि सः) परि बभूव, अरान् नेमिः न॥

इसके नीचे थोड़ी-सी टिप्पणी दी जाए तो अच्छा रहे। उक्त वेदमुद्रण से इसकी लिखाई और छपाई चार गुना होगी। अर्थात् साठ हजार रु० से यह ग्रंथ तैयार होगा और यह तीन भागों में प्रकाशित होगा। मूल्य कम से कम १५) होगा (मूल्य सम्बन्धी यह आकलन लगभग पचास वर्ष पुराना है।-सं०) पर नित्य पाठ के लिए अप्रतिम ग्रंथ होगा और साधारण संस्कृत जानने वाला इस ग्रन्थ का २।३ वार पाठ करने से वेदज्ञाता बन सकेगा तथा वेद की कठिनाई की समस्या इस ग्रंथ के बनने से तत्काल दूर होगी।

वास्तव में वेद के अर्थज्ञान की कोई समस्या ही नहीं है। इस तरह के ग्रंथ निर्माण करने की ही बात है। ऐसे ग्रन्थ हो जाएंगे तो हर एक वेदधर्मी वेद पाठ करेगा और ४-५वर्षों में वेद का ज्ञाता बनेगा। ऐसे ग्रंथ के लिए व्यय करने वाले धनिकों की ही न्यूनता है। धनी लोग इसका महत्त्व समझते नहीं, और वैदिक-धर्मियों में भी वेदज्ञान की उतनी आतुरता नहीं जितनी आतुरता ऐसे कार्य के लिए आवश्यक होती है। इसी कारण वेद अब तक दुर्बोध बना हुआ है।

सुबोध वेद

बाणभट्ट की कादम्बरी की अपेक्षा वेद बहुत ही सुबोध है। वेदमंत्रों में लम्बे-लम्बे समास नहीं हैं जैसे आधुनिक ग्रन्थों में होते हैं। बड़े भारी कठिन पद नहीं.

सीधे सादे पद हैं . देखिए एक दो उदाहरण—

त्वं महां इन्द्र तुभ्यं ह क्षाः अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान् सृजः सिन्धूं रहिना जग्रसानान् ।। ऋक् ४।१७।१

अर्थ—हे इन्द्र ! तू बड़ा है । पृथिवी ने तेरे महत्वपूर्ण क्षात्रबल के लिए अनुकूलता दर्शायी । द्युलोक ने भी (अनुकूलता दर्शायी) । तूने अपने सामर्थ्य से वृत्र का वध किया । शत्रु द्वारा ग्रस्त किए नदियों के प्रवाहों को तुमने खुला कर दिया ।

कितना सरल अर्थ है । अब इस मन्त्र से बोध इस तरह लिया जाता है ।

१ त्वं महान् असि—तू बड़ा है । जैसा वह बड़ा है, वैसे हम बड़े बनें । बड़े बनने का यत्न करना चाहिए ।

२ त्वं वृत्रं जघन्वान्—तूने वृत्र का वध किया । वृत्र नाम घेरने वाले शत्रु का है । शत्रु का वध करना उचित है । राजा राष्ट्र के शत्रु का बध करे, राष्ट्र को निर्भय करे । स्वयं भगवान् बने और शत्रु का नाश करे ।

३ अहिना जग्रसानान् सिन्धून् सृजः —शत्रु द्वारा अपने अधीन किए गए जलप्रवाहों को इन्द्र ने सब लोगों के हित के लिए मुक्त किया इसी तरह राष्ट्र का राजा शत्रु के आधीन हुए जल-प्रवाहों को राष्ट्र की प्रजा का हित करने के लिए शत्रु के अधिकार से मुक्त करे और सबके हितार्थ खुला छोड़ देवे ।

मंत्र के सरल अर्थ को देखना और उस अर्थ को व्यक्ति के जीवन में तथा राष्ट्र के जीवन में घटाना, यह है वैदिक पद्धति और यह पद्धति अत्यन्त सरल है । इन्द्र ने वृत्ररूपी शत्रु को मारा । यह व्यक्ति के जीवन में घटाने से काम-क्रोध रोगादि शत्रुओं को दूर करने का भाव स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि ये ही व्यक्ति के क्षेत्र में शत्रु हैं । इन्द्र ही राष्ट्रीय क्षेत्र में नरेन्द्र अर्थात् राजा है । वह अपने राष्ट्रीय शत्रु को अन्दर और बाहर के शत्रु को दूर करे, यह भाव राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रकट होता है ।

यह भाव मन्त्र के मनन से विदित हो जाता है । इसीलिए मन्त्र का मनन करना चाहिए । एक उदाहरण और देखिए—

युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषमषाल्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजाः अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ।। ऋक् ७।२०।३

(युध्मः) युद्ध करने में अपना मन रखने वाला युद्ध, करने में तत्पर, (अनर्वा=अन्+अर्वा) युद्ध में कभी पीछे न हटने वाला अतएव शत्रु रहित, (खज-कृत्) युद्ध करने में अत्यन्त कुशल, (समद्वा) स्पर्धा करने वाला, शत्रु से विरोध करने में समर्थ (शूरः) शूरवीर, (सत्रा+षाट्) सब शत्रुओं का पराभव करने वाला

(जनुषा ई अषाल्हः) जन्म से ही सदा विजयी, स्वभाव से ही शत्रु का विनाश करने में प्रवीण, (स्वोजाः=सु×ओजाः) उत्तम बलवान, प्रभावी सामर्थ्य से युक्त, ऐसा यह (इन्द्रः) शत्रु का विदारण करने वाला वीर (पृतनाः वि आसे) शत्रु के सैनिकों को तितर-बितर करता है, भगा देता है और (शत्रूयन्तं विश्वं जघान) शत्रुता करने वाले सब दुष्टों को मारता है। एक मंत्र का उदाहरण और—

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी।
ता देवाः समकल्पयन्नियं जीवातवा अलम् ॥ अथर्व० ६।१०९।१

"पिप्पली (क्षिप्त-भेषजी) उन्माद रोग की औषधि है, और (अतिविद्ध भेषजीः) अत्यन्त बींधने वाली बीमारी की औषधि है (देवाः तां समकल्पयन्) देवों ने उस औषधि को संकल्पपूर्वक बनाया है। (इयं जीवातवै अलं) यह औषधि दीर्घ-जीवन के लिए पर्याप्त है।"

यह अर्थ भी अत्यन्त सरल और अत्यन्त स्पष्ट है। किसी तरह विशेष दूरान्वय की अथवा शब्द के गूढ़ अर्थ देखने की आवश्यकता नहीं हैं। जो आयुर्वेद, वैद्यक, रोगनिवारण आदि विषय के मंत्र हैं, वे सब ऐसे ही सरल और सुबोध हैं। ऐसे मंत्र करीब एक हजार हैं जहां अर्थ के विषय में संदेह नहीं हो सकता।

इन मन्त्रों की भाषा सरल सुबोध, तत्काल समझ में आने वाली है। ऐसे मन्त्रों के अनेक अर्थ भी नहीं होते हैं। इनका अर्थ एक ही होता और वह भी सरल है।

वेद में कई कूट मंत्र भी होते हैं। इन में भी दो प्रकार के मंत्र हैं। एक मंत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ सरल होने पर भी भाव समझ में आना कठिन है और दूसरे वे मंत्र कि जिनका शब्दार्थ भी कठिन और भाव भी कठिन। ऐसे मंत्र चारों वेदों में पांच छः सौ मंत्रों से भी कम हैं। जिनको सचमुच कठिन कह सकते हैं उनकी संख्या बहुत नहीं है। इस प्रकार के मन्त्रों का भी एक उदाहरण देखिए—

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्रवयाप वयेत्यासते तते ॥ ऋक् १०।१३०।१

इस मंत्र के शब्द सरल अर्थ वाले हैं। इनमें एक भी कठिन अर्थ वाला पद नहीं है। पर इसका भावार्थ कठिन है। इस मंत्र का शब्दार्थ देखिए—

(यः यज्ञः) जो यज्ञ (तन्तुभिः विश्वतः ततः) अनन्त धागों से सब ओर फैला है और जो (देवकर्मेभिः एकशतं आयतः) देवों के लिए कर्म करने वालों के द्वारा एक सौ (वर्ष) पर्यंत विस्तार युक्त हुआ है। (ये पितरः आययुः) जो पितर आए हैं, (इमे वयन्ति) वे यहां कपड़ा बुन रहे हैं। (तते आसते) फैलाए ताने के पास वे बैठते हैं और कहते है कि (प्रवय) आगे बुनो, (अप वय) बाजू में बुनो।

इस मन्त्र के शब्द अत्यन्त सरल अर्थ वाले है। एक भी कठिन पद यहां नहीं है। पर अर्थ गूढ़ है। यहां सौ वर्ष की आयु का वस्त्र बुनना है। दिव्य कर्म करने वालों के प्रयत्न से यह कपड़ा बुना जाना चाहिए। सौ वर्ष का जो आयु का काल है, वह इसकी लम्बाई है। प्रतिदिन दिव्य कर्मों के सूत्रों से तिरछे धागे भरे जाते हैं। इनमें रंग-विरंगे धागों से सौंदर्य लाया जाता है। जो सत्कर्म करने वाले हैं और जो संरक्षक हैं, वे इस वस्त्र के समीप वैठते हैं और वे कहते रहते हैं कि हां यहां तक हुआ है, अब आगे इस तरह करो, इसके आगे इस रीति से करो। संक्षेप से यह भाव इसका है।

ऐसे मंत्र समझने में कठिन होते हैं। दूसरे मन्त्र जिनमें पदार्थ भी कठिन और अर्थ तथा भावार्थ भी कठिन होते हैं, वे सचमुच कठिन हैं। पर ऐसे मन्त्र बहुत थोड़े है। इस तरह विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि सचमुच वेद का अर्थज्ञान होना कठिन नहीं है।

वेद पढ़ने वालों की सुविधा के लिए मन्त्र-पद-अन्वय सरल अर्थ जिसमें क्रमपूर्वक छपे हों, ऐसी पुस्तकें तैयार होनी चाहिए। वेद प्रचार पर इतना व्यय कर ५०-६० हजार रु० खर्च करके ऐसा ग्रन्थ छापने की वात किसी के ध्यान में नहीं आयी। इसमें कुछ भी मुश्किल नहीं है। केवल थोड़े से प्रयत्न की आवश्यकता है।

धन होने पर भी दरिद्र

वेद जैसा अपूर्व ग्रन्थ अपने पास हो और वह अति दुर्बोध वना रहे, तो उसके अभिमान से क्या लाभ ? साहूकार के घर की तिजोरी में करोड़ों रु० भरे हैं, पर उप पेटी की चावी गुम हो चुकी है। नयी चाबी नहीं बनती और पुरानी मिलती नहीं। तो जिस तरह वह धनी निर्धन जैसा है, वैसी ही भारतवर्ष की अवस्था वनी है। भारतीयों के पास वेद है, पर वेद सरल होने पर भी उसका समझने वाला कोई नही है। वह वेद किसी को समझ में नहीं आता, यही कहकर आज उसकी महत्ता वर्णन की जाती है। भला इस तरह की महत्ता का अर्थ ही क्या है ? यदि सचमुच वेद समझ में न आने वाला है, तब तो वह मानवों के लिए निकम्मा है। जो समझ में आ सकता है और आचरण में लाया जा सकता है, वह धर्म ग्रन्थ माना जा सकता है। पर जो किसी की समझ में ही नहीं आता, उसे धर्म ग्रन्थ किस तरह माना जा सकता है ?

वास्तव में वैदिकों के प्रयत्न से आज तक वेद की रक्षा हुई है। इसलिए वैदिक ब्राह्मणों का जगत् पर अनन्त उपकार है। पर इन्होंने एक बड़ा प्रमाद भी
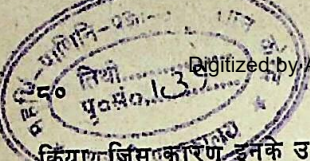
किया, जिस कारण इनके उपकार का लाभ जितना होना चाहिए था, उतना नहीं हो सका। 'कलौ आद्यन्तावस्थितिः' कलियुग में ब्राह्मण और शूद्र ही हैं, क्षत्रिय ओर वैश्य नहीं है, ऐसा कह कर क्षत्रिय और वैश्यों को भी शूद्रों में गिन लिया। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये तीन वर्ण वेदों के अधिकारी थे और वेद पढ़ते थे। 'अदुष्ट-कर्मणां उपनयनं' सत्कर्म करने वाले शूद्रों को भी उपनयन के बाद वेद का अधिकार मिलता था। पर अब केवल ब्राह्मणों का ही वेद का अधिकार माना गया। स्त्रियों को भी उपनयन न होने से वेदाधिकार नहीं रहा। जन संख्या में आधी स्त्रियां होती हैं, उनको वेदाधिकार नहीं रहा, यद्यपि वेद में मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाएं हैं, तथापि उनके मन्त्रों को पढ़ने का अधिकार भी स्त्रियों को न रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि बहु जनसंख्या का वेद से सम्बन्ध ही न रहा और केवल ब्राह्मणों के पास ही वेद रहा। उन्होंने वेद का रक्षण तो किया, पर बहुजन समाज से वेद का संबंध तोड़ दिया। वेद में मानव धर्म है, और मानव समाज के तीन चौथाई भाग को वेद का पता भी नहीं। आज तक यही अवस्था रही है। आज भी हिन्दुओं में से बहुजन समाज वेद को जानता भी नहीं, फिर पढ़ना, आचरण करना और उस वेद धर्म का पालना करना तो दूर की बात है।

केवल शब्द, अर्थ नहीं

केवल ब्राह्मणों ने वेद का संरक्षण किया—इसका अर्थ यह है कि वेद के शब्दों का उन्होंने संरक्षण किया। पद, अक्षर, वर्ण, स्वर, मात्रा सबका उत्तम रीति से रक्षण किया। यह सब श्रेय ब्राह्मणों को हैं। पर उन्होंने भी वेद का अर्थ जानने का यत्न नहीं किया। वेद के अक्षरों को वे कण्ठ करते रहे। १२ वर्ष अध्ययन करके एक वेद का संरक्षण ये करते थे। चारों वेदों का संरक्षण करना कठिन कार्य था, एक-एक वेद के पाठक तैयार किए गए और इन्होंने संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक-सूत्र आदि ग्रन्थों के अक्षरों का संरक्षण किया। इतने अक्षरों का भार उठाना, पर एक मंत्र का भी अर्थ न जानना, यह कितना आश्चर्य है! इनका वर्णन निरुक्तकार ने यों किया है :

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं योऽभिजानाति नार्थम्। निरुक्त १।६।१९

"यह भार उठाने वाला खम्बा है, जो वेदों का पठन करके मन्त्र के अर्थ को नहीं जानता।" निरुक्तकार के समय में भी ऐसे वेदपाठी होंगे, जिनके विषय में उसने ऐसा लिखा है। आज सैकड़ो वर्षों से वेदपाठियों का वेदाध्ययन ऐसा ही चला है। वेदरक्षण के लिए इन सबको सहस्रशः धन्यवाद है। पर इन्होंने ब्राह्मण जाति

को छोड़कर किसी अन्य को वेद नहीं सिखाया। शूद्र वेद पाठ सुने तो उसके कान में तप्तरस डालने तक का दुराग्रह किया। अन्य जातियां वेद पाठियों की निंदा इसी कारण करने लगीं। बुद्ध ने अपना संप्रदाय पृथक् निर्माण किया और प्राकृत भाषा में उपदेश करना प्रारम्भ किया। यह एक प्रकार से वैदिकों से द्वेष ही था।

ऐसा भी मान सकते हैं कि क्षत्रिय वैश्यादिकों ने ब्राह्मणों की आजीविका चलाने का भार उठाया और ब्राह्मणों से कहा कि तुम 'वेदों की रक्षा करो'। ब्राह्मणों ने अपना सम्पूर्ण जीवन वेदों की रक्षा के लिए लगाया। अपनी आजीविका के लिए कोई भी दूसरा धंधा नहीं किया; धन नहीं कमाया और वेदों को आज तक सुरक्षित रखा।

अन्य वर्ण के लोग ब्राह्मण जाति का यह उपकार जानते थे। इसीलिए उन वैदिक ब्राह्मणों की वे आजीविका चलाते थे। पर अंग्रेजों के इस देश में आने के पश्चात् यह बात नहीं रही। अंग्रेजों की हिन्दुओं फूट में डालने की नीति के कारण ब्राह्मण और अब्राह्मणों में फूट उत्पन्न हुई और वह बढ़ती गयी। अन्य जातियाँ मानने लगीं कि ब्राह्मण केवल बैठकर खाते है और हम कष्ट करके अन्न उत्पन्न करते हैं। इस तरह की विचारधारा से वैमनस्य बढ़ गया। यों वेद का आदर तो नष्ट हुआ ही, वेद की रक्षा करने वाली ब्राह्मण जाति का आदर भी नष्ट हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण जाति की आजीविका बन्द हुई और ब्राह्मणों को अपनी आजीविका के लिए दूसरे व्यवसाय करने पड़े। इसी से आज वेद की रक्षा कैसे होगी, यह चिन्ता उत्पन्न हुई जो ७०-८० वर्षों के पूर्व नहीं थी।

भविष्य की चिन्ता

वेदपाठियों की संख्या लगातार कम हो रही है और भविष्य में वेदपाठी नहीं रहेंगे, ऐसा दीख रहा है। वेदपाठी वेद का अर्थ जानते नहीं थे, पर कण्ठस्थ तो रखते थे। आज नामधारी वेद जानने वाले पैदा हुए जो वेद को कण्ठस्थ तो करते ही नहीं, वेद का अर्थ भी पूर्णतया नहीं जानते। यह अवस्था भयावह है।

हिन्दू धर्म, हिन्दू-जाति तथा हिन्दू-संस्कृति के प्राण हैं वेद। तथापि सम्पूर्ण हिन्दू जाति के मन में वेद के लिए कोई आकर्षण नहीं है। इसका कारण इतना ही है कि हिन्दू जाति का वेदों के साथ संपर्क छूटे हजारों वर्ष बीत गए हैं और अन्यान्य आधुनिक सम्प्रदाय के ग्रन्थों के साथ हिन्दू जाति का आकर्षण बढ़ गया है। इस कारण हिन्दु जाति की बड़ी हानि हो रही है। पर इसकी पर्वाह किसी को भी नहीं है। हिन्दू जाति के पास वेद जैसा अन्य कोई ग्रन्थ नहीं जिसके नाम से सबको एकताबद्ध किया जा सके।

आधुनिक ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, देवसमाज तथा आर्यसमाज इन संस्थाओं में आर्य समाज ने ही वेदों के ऊपर आर्य जाति का मन केन्द्रित करने का भारी ओजस्वी प्रयत्न किया है। इसका सम्पूर्ण श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को है। परन्तु हिन्दू जाति के कोने-कोने तक वेद का सन्देश पहुंचाने का कार्य इस संस्था से भी नहीं हो सका। अब भविष्य में क्या होगा, कहना कठिन है।

याज्ञिक और वेद

वेद का संरक्षण करने वालों में वेदपाठियों के कार्य की आलोचना हमने की। दूसरे स्थान पर यज्ञकर्ता अथवा याजकों का स्थान है। वेद यज्ञ के लिए बने हैं—ऐसा ये मानते हैं और वेद के मन्त्रों को यज्ञ के कर्म में प्रयुक्त करते हैं। श्रौत, स्मार्त और पौराणिक कर्म जो उपनीत द्विज करते हैं, उनमें वेद मंत्र बोल जाते हैं। श्रौत यज्ञों में वेद मंत्र प्रयुक्त होते हैं। पौराणिक पूजा में भी पुरुष सूक्त जैसे सूक्त बोले जाते हैं। जिनका उपनयन नहीं हुआ, वे जो कर्म करेंगे, उनमें वेद मंत्र नहीं बोले जाते, उनके स्थान पर संस्कृत श्लोक बोले जाते हैं। पर जो कर्म उपनयन वाला मनुष्य करता है, उसमें वेद मंत्रों का प्रयोग होता है। यह सार्थ अथवा अर्थानुकूल ही होता है, ऐसी बात नहीं है। नवग्रहों के मंत्र अन्वर्थक नहीं है। पूजा में १६ उपचारों के लिए १६ मंत्र पुरुष सूक्त के बोले जाते हैं, ये भी अर्थानुकूल नहीं हैं। अर्थानुसारी हो या न हो, कर्म में वेद के मन्त्र अवश्य बोले जाएगे। इस परिपाटी से वेद मंत्रों का संरक्षण हुआ, इसमें सन्देह नहीं है।

पर इसमें एक बात बनी। वह यह कि उपनयन का अधिकार जन्मतः ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों को था। सत्कर्मकर्ता शूद्रों को विशेष प्रसंग से वह अधिकार मिलता था। यह अपवाद था। इन तीन वर्णों में कलियुग में क्षत्रिय-वैश्य न होने से उपनयन का अधिकार केवल ब्राह्मणों तक ही रहा। अन्य सब लोग शूद्रों में सम्मिलित हुए, इस कारण उपनयन से वंचित रहे, इसी हेतु से वेदाधिकार से भी वे दूर रहे।

शूद्र यदि वेद मंत्र सुने तो उसके कान में त्रपु-जतु (लाख या सीसा) पिघलाकर डालने तक पराकाष्ठा का दण्ड कुछ ग्रन्थों में लिखा है। पर ऐसा होता होगा, ऐसा नहीं लगता। वैदिक समय के कवष ऐलूष की कथा देखने योग्य है।

> ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रं आसत। ते कवषं एलूषं सोमात् अनयन्। दास्याः पुत्रः कितवो अब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्ट इति। तं बहिः धन्वोदवहन्। अत्र एनं पिपासा हन्तु। सरस्वत्या उदकं मा पात् इति। स बहिः धन्वोदूल्हः पिपासयावित्त एतदपोनप्त्रीयं अपश्यत्।...तं सरस्वती समन्तं पर्यधावत् ते वा ऋषयोऽब्रुवन्, विदुर्वा इमं देवा, उप इमं ह्वयामहा इति।
>
> ऐ० ब्रा० २/१९

—"ऋषियों ने सरस्वती तीर पर सत्र नामक यज्ञ प्रारम्भ किया । उनमें कवष एलूष ऋषि बैठा था । ऋषियों ने वहां से उसको बाहर निकाला और कहा, यह दासी पुत्र जुआरी हमारे अन्दर कैसे बैठ सकता है । उन ऋषियों ने उसको नदी से दूर बालुका प्रदेश में रखा । प्यास इसको मारे, सरस्वती का जल भी इसे न मिले । इस तरह वह प्यास से दुःखी हुआ और यह अपोनप्त्रीय सूक्त गाने लगा ।""सरस्वती नदी दौड़ती हुई उसके पास पहुंची । यह देखकर ऋषि कहने लगे कि देवों ने इसकी प्रार्थना सुनी, इसलिए हम भी इस कवष ऐलूष को अपने सत्र में बुलाएंगे ।" ऐसा कहकर उन ऋषियों ने उसे अन्दर बुलाया । इस ऋषि के सूक्त ऋक् १०।३०—३४ तक हैं । यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण में है । कुछ भी हो, इस ऋषि द्वारा दृष्ट पांच सूक्त ऋग्वेद में हैं । ऐसे सूक्त-द्रष्टा ऋषि को भी इतने कष्ट हुए थे । दासीपुत्र, जुआरी जैसी गालियां भी इसको सुननी पड़ीं । शूद्र के लिए ये कष्ट होते रहे ।

जिस समय क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वेद मन्त्र से दूर रखे गए, उस समय ये लोग आचारभ्रष्ट हुए, संस्कृत भाषा जाग्रत नहीं रही, आर्थिक क्लेशों के कारण वेदाध्ययन के लिए जितना समय चाहिए, उतना उनके पास नहीं था । ऐसे अनेक कारण इस संबंध में दिए जा सकते हैं । ऐसे और भी कारण होंगे । पर इससे यह स्पष्ट है कि बहुत से हिन्दू वेद से दूर रहे, इस कारण इस समय वेद सब हिन्दुओं की उदासीनता का विषय बना हुआ है ।

याज्ञिकों का ध्येय

याज्ञिकों का ध्येय बड़ा उच्च था । यज्ञ द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान लोगों को देना—यह अत्यन्त उच्च ध्येय इन याज्ञिकों का था । ब्राह्मण ग्रन्थों और कल्प ग्रंथों में अनेक यज्ञों का वर्णन है । यज्ञ आर्यों का जीवन सुधारने का कार्य करता था ।

यज्ञशाला का चित्र मानव शरीर के आधार पर तैयार किया गया है । शरीर में जो शक्तियां जहां हैं और वहा उनका जो सम्बन्ध है, वह यज्ञ द्वारा बताना उनका उद्देश्य था ।

सिर के स्थान पर उत्तर वेदी है, सप्त इन्द्रियों (२ आंख, २ कान, २ नाक, १ मुख मिलाकर सात इन्द्रियों) के प्रतिनिधि सप्त धिष्ण्य है, पेट के स्थान पर आहवनीय आदि अग्नि है जिसमें अन्न का हवन होता है । उपस्थेन्द्रिय के स्थान में गार्हपत्याग्नि है, जिसमें पुत्र की उत्पत्ति होती है । पांवों के स्थान पर सब सदस्य हैं । इस तरह शरीर का ही चित्र यज्ञशाला है । शरीर के अन्दर चलने वाले कार्य यज्ञ-शाला में यज्ञ द्वारा बताए जाते हैं । इस तरह यज्ञ द्वारा शरीर के अन्दर की अध्यात्म शक्तियों का दर्शन होता है ।

आनन्द
मय

विज्ञानमय

मनोमय

प्राणमय

अन्नमय
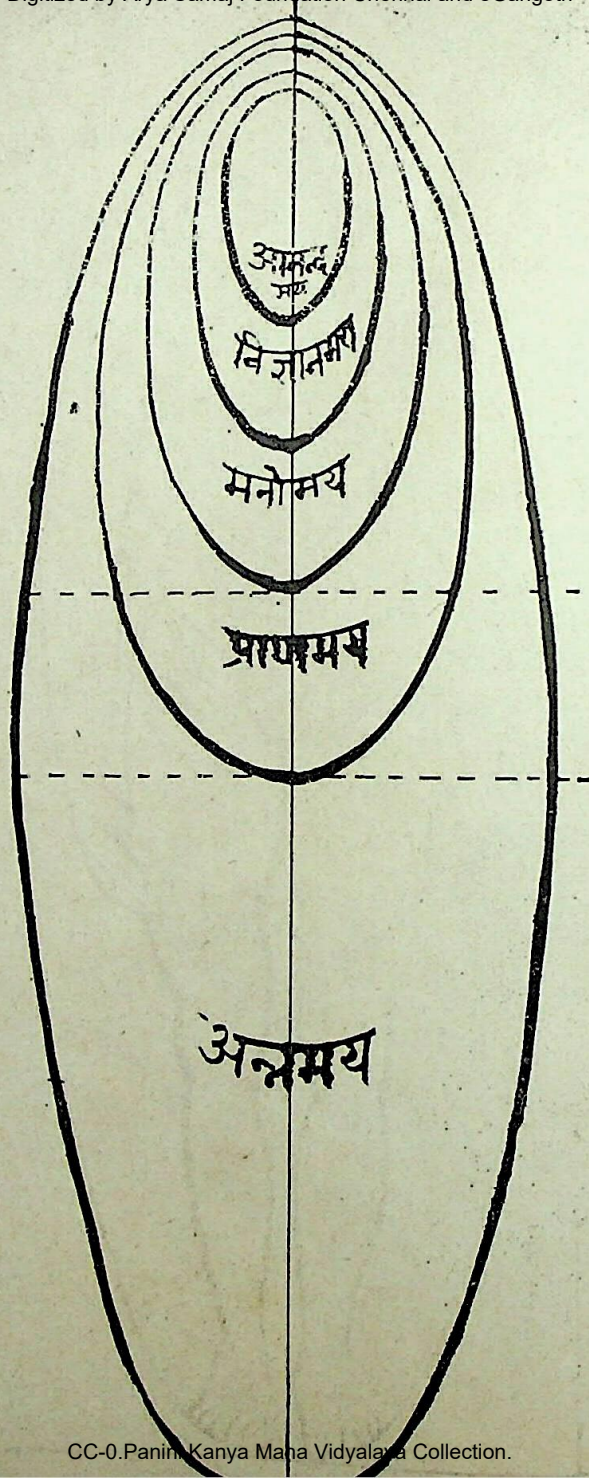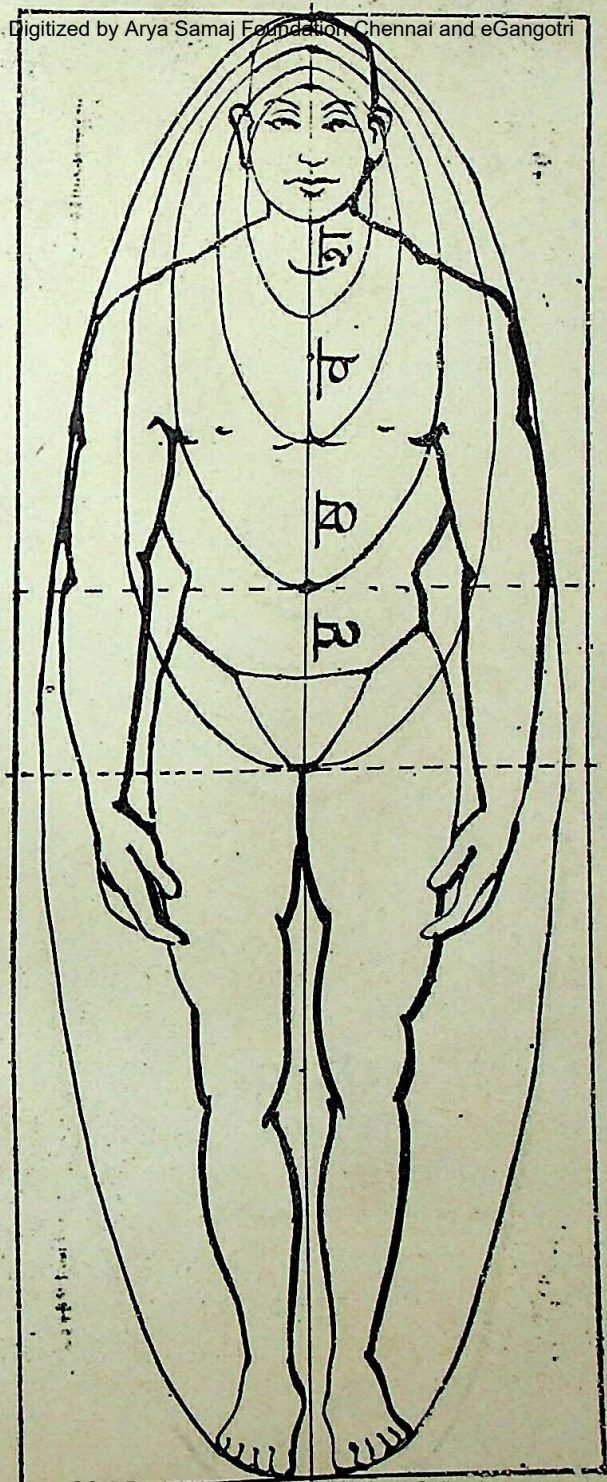
वेद का मुख्य विषय अध्यात्म ज्ञान देना है, वह इस रीति से यज्ञ द्वारा सिद्ध होता है। यज्ञ अनेक हैं और इष्टियां सैंकडों हैं। मानवी व्यवहार की सुसिद्धि के लिए इनका उपयोग है। उदाहरणार्थ देखिए, राष्ट्र में राजा का निर्वाचन करने के लिए राजसूय सज्ञ है, राष्ट्र को बढ़ाने के लिए अश्वमेध है, सुपुत्र निर्माण करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ है, पर्जन्य लाने के लिए पर्जन्येष्टि है, मानवों का संगठन करने के लिए नरमेध है, राष्ट्र में गौओं और बैलों का संवर्धन करने के लिए गोमेध है। इस तरह अनेक यज्ञ और अनेक दृष्टियां मानवों का संगठन करके मानवों की उन्नति करने के लिए हैं।

जिस तरह राष्ट्रीय महासभा आज भारत में होती है और उसमें राष्ट्रीय बातों और योजनाओं का विचार होता है, वैसा ही विचार यज्ञ में सवेरे और शाम को हवन होता था और वीच के ४।५ घण्टों में व्याख्यान होते थे। इस तरह ये यज्ञ राष्टीय जीवन का सुधार करने में समर्थ थे। सोमयाग ब्राह्मणों के लिए, अश्वमेध क्षत्रियों के लिए, वाजपेय वैश्यों के लिए और नरमेध सव मानवों के कल्याण के लिए होता था। इन यज्ञों में वेद मंत्र वोले जाते थे, इस कारण वेदों की सुरक्षा होती थी और साथ-साथ मानवी कल्याण की भी आयोजनाएं होती थीं। इस रीति से वैदिक आर्यों का जीवन यज्ञीय जीवन था, और जीवन की उन्नति करने के सब पहलू यज्ञों द्वारा ही सचेत किए जाते थे। प्रतिदिन के यज्ञ, पाक्षिक यज्ञ, मासिक यज्ञ, चातुर्मास्य इष्टियां, वार्षिक यज्ञ, ऋतु यज्ञ, विशेष कारण के लिए यज्ञ—ऐसे अनेक प्रकार के यज्ञ होते थे, जिनसे आर्यों का संगठन होता था और सर्वांगीण उन्नति होती थी।

पौराणिकों के प्रयत्न

वेद की रक्षा के लिए जैसे वेदपाठियों ने तथा याज्ञिकों ने यत्न किए, इसी तरह पुराण लेखकों ने भी प्रयत्न किए थे। पौराणिकों ने वेद के आशय का रक्षण किया, इतना ही नहीं, वेद के आशय को ब्राह्मण से शूद्र तक पहुंचाया।

यज्ञ-मण्डप में दो विभाग होते हैं। एक विभाग में हवन आदि यज्ञ-क्रियाएं होती हैं और दूसरे विभाग में जनसंमर्द जमा होकर बैठता है और वहां प्रवचन, धर्मचर्चा तथा शास्त्रार्थ होते हैं। यह स्थान हजारों मनुष्य बैठने योग्य होता है और शास्त्रचर्चा की दृष्टि से इसका महत्त्व होता है। पुराण-गाथा सूत लोग गाते और जनता को कथाओं से वैदिक धर्म का तत्त्व समझाते हैं। जो वेद मंत्रों में गुह्य रीति से कहा जाता है, और जो यज्ञ की क्रिया में ओत-प्रोत रहता है, वह तत्व तथा राष्ट्रीय उन्ननि के लिए आवश्यक अन्यान्य ज्ञान इस सभामण्डप में व्याख्यानों द्वारा, कथागानों द्वारा तथा प्रवचनों द्वारा दिया जाता है।

वेद मन्त्रों का गुह्य-ज्ञान सब लोग नहीं समझ सकते। इसके लिए उस ज्ञान को रोचक बनाकर कथा के रूप से समझाया जाता है। 'सत्य बोलना' यह वेदोपदेश है, इसको समझाने के लिए राजा हरिचन्द्र की कथा कहना और सत्य वचन, सत्य व्यवहार और सत्य विचार का महत्व सबको सुबोध रीति से समझाना पौराणिकों का कार्य था। यज्ञ मण्डप के एक विभाग में पुराण कथा श्रवण तथा शास्त्रचर्चा होती थी। इस मण्डप में शिल्प के प्रदर्शन, हस्तलाघव के प्रयोग, और चित्त का आकर्षण करने के प्रसंग होते थे जो सबके सब बोधप्रद और उपदेशप्रद होते थे।

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।" इतिहासों और पुराण कथाओं से वेद के उपदेश को समझना चाहिए, ऐसा जो कहा है, वह सत्य है।

इतिहास दो हैं, रामायण और महाभारत। पुराण १८ हैं और उपपुराण १८ हैं। पुराणों के सब ग्रंथों को मिलाकर करीब चालीस लाख श्लोक हैं। इतना यह विस्तार वस्तुतः वेदों के सिद्धांत जनता तक पहुंचाने के लिए था। परन्तु लेखकों ने अपने-२ विचार बीच-२ में घुसेड़ दिए और पुराणों को बहुत बढ़ा दिया, इस कारण पुराणों में वैदिक और अवैदिक विचार इस समय दिखाई देते हैं। अतः इन इतिहास और पुराणों से वेद के सिद्धांत प्रतिपादित हो रहे हैं, आज ऐसा कहना अशक्य है। परन्तु प्रारम्भ में पुराण इसी कार्य के लिए थे। इतिहास और पुराणों से वेद का आशय स्पष्ट करना चाहिए—ऐसा स्मृति और शास्त्रों का कथन है। वे इतिहास और वे पुराण अति प्राचीन समय में छोटे थे और पश्चात् वे पन्थाभिमानियों ने बढ़ाए। प्रक्षिप्त भाग पुराणों में बहुत है।

तथापि हम आज भी वेद की व्याख्या करने वाला भाग पुराणों और इतिहासों में कितना और कहां है, इसका निर्णय कर सकते हैं। श्रीमद्भागवतादि पुराणों में वैदिक सूक्तों के सूक्त अनुवाद करके दिए हैं। इसी तरह वैदिक मंत्रों में आए थोड़े से मूल से बड़ी और विस्तृत कथा पुराणों में दीखती है। इंद्र-वृत्र युद्ध, अश्विनी कुमार, च्यवन, आदि कथाएं इसके उदाहरण में दी जा सकती हैं। अतः इनका मनन करके आज भी हम वेद मंत्र और पुराण की गाथाओं का परस्पर सम्बन्ध क्या है, यह देख सकते हैं। यह विषय अत्यन्त आवश्यक है और इसके ग्रंथ प्रकाशित होने चाहिएं। पर ४।५ सौ पण्डित इसी पर १०।२० वर्ष लगाएंगे तब कहीं तुलनात्मकग्रंथ लोगों को मिल सकेंगे और इनसे जान सकेंगे कि कौन-से वेद भाग से कौन-से पुराणों के भाग का कैसा सम्बन्ध है।

इतिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२॥

"उसके पीछे इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी ये सब चले। इतिहास का, पुराण का, गाथाओं का और नाराशंसियों का वह प्रिय धाम हो जाता है, जो यह जानता है।

इस तरह पुराणों, इतिहासों, हाथाओं और नाराशंसी अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों की प्रशंसा के विषय में वेद में वचन हैं। यहां वेद में इतिहास या पुराण है, ऐसा सुनने मात्र से पाठकों को चमकना नहीं चाहिए, वेद में इतिहास और पुराण आदि की कल्पना ही पृथक् है।

वेद में इतिहास

युरोपियन लोग, विशेषत: ग्रीक लोग, मानवों का इतिहास विश्वसनीय रीति से लिखने में प्रसिद्ध हैं। पर भारत के ऋषिमुनि मानवी शरीरों की हलचल को इतिहास नहीं कहते। शरीर की हलचल मानसिक विचारों से होती है। इसलिए मानसिक विचारों और भावों का आन्दोलन कैसा होता है, यह देखकर हमारे ऋषिमुनि इतिहास या पुराण लिखते थे। इसलिए इसको शाश्वत इतिहास कहते हैं। यह शाश्वत इतिहास वेद में है और सामान्य इतिहास पुराणों में है।

इसलिए "दशरथ × दशमुख" "धर्मराज × दुःशासन" ऐसे गुणबोधक नाम लिखे हैं। वास्तव में लंका के राजा का नाम 'रावण' (रोने वाला) किस तरह होगा और भारतीय सम्राट् 'दुःशासन' (दुष्ट रीति से राज्य चलाने वाला) यह कैसे कौन बोल सकता है? वस्तुतः ये इतिहास मानवों के ही हैं, पर ऐसे ढंग से लिखे गए हैं कि जिससे उनकी मनोभूमि का पता पाठकों को लगे। ये इतिहास इस भूमि पर होने पर भी सनातन और शाश्वत इतिहास है और यूरोप के इतिहासों के समान मानवों के अशाश्वत इतिहास नहीं हैं। इतिहास पुराण की यह भारतीय कल्पना समझना उचित है।

'पुराण' का अर्थ ही 'पुरा अपि नवं' प्राचीन समय में हो जाने पर भी नवीन जैसा है। इसीलिए यह शाश्वत है। दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मद, दुःशील ये धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम हैं। ये नाम ऐसे ही बुरे अर्थ वाले धृतराष्ट्र ने किस तरह रखे होंगे! कोई पिता अपने पुत्रों के नाम इस रीति से दुष्ट भाव वाले नहीं रखता। इसलिए हम कहते हैं कि ये कवि के रखे नाम हैं और मनोभाव बताने के लिए यह रचना कवि ने की है। इस कारण यह इतिहास शाश्वत है।

पाठक हमारे भारतीय ऋषिमुनि-रचित इतिहास-पुराणों को इस शाश्वत दृष्टि से समझने का यत्न करें—तो उनमें इन्हीं शब्दों से नवीन शाश्वत भाव प्रकट

होगा और कोई किसी तरह का भ्रम नहीं होगा। इतिहास पुराण का शाश्वत भाव ध्यान में न आने से बड़े विवाद व्यर्थ ही खड़े हो गए हैं। वास्तव में उनका कोई प्रयोजन नहीं है।

इन इतिहास पुराणों, गाथाओं और नाराशंसियों में जितना शाश्वत भाव है, उससे वेदों का तथा वैदिक ज्ञान का संरक्षण हुआ है। इसलिए ये भाग वेद की सुरक्षा करने वाले हैं।

आरण्यक

वेद में अध्यात्म-ज्ञान है। अनेक रीतियों से यह ज्ञान वेद में वर्णन किया है। इसका प्रकाश करने के लिए आरण्यक और उपनिषद् बने हैं। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ-विधि का वर्णन करने के लिए हैं, तथापि उनमें भी बीच-२ में अध्यात्म का दर्शन कराया गया है। मूलतः यज्ञ- विधि भी अध्यात्म दर्शन के लिए ही है, तथापि उसका उद्देश्य राजकीय तथा सामाजिक अभ्युत्थान भी है। परन्तु आरण्यकों और उपनिषदों का उद्देश्य केवल अध्यात्म दर्शन ही है। वेद में आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रियां आदि शक्तियों का जो वर्णन है उसे प्रकट करके जिज्ञासुओं को बताना इनका कार्य है।

उपनिषदों में—

तत् एतत् ऋचा अभ्युक्तम्। छां० ३।१२।५ बृ० ४।४।२३; मुण्ड ३।२।१०; प्रश्न १।७

तदेते द्वे ऋचे भवतः। छां० ३।१७।६

तत् एतत् श्लोकेन अभ्युक्तम्। कौ० १।६

तत् एष श्लोकः। छां० २।२१।३; ३।११।१; ५।२'९; ५।१०।८ इ०। प्रश्न १।१०; ३।१० इ०

इस तरह अनेक स्थानों पर अध्यात्म का प्रतिपादन करके उसकी पुष्टि के लिए वेद वचन दिए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वेद मंत्रों में कही आत्म-विद्या का प्रतिपादन ही आरण्यक और उपनिषद् करते हैं। अर्थात् आरण्यक और उपनिषद् वेदविद्या की सुरक्षा करने के लिए हैं। जितनी शाखाएं हैं, उतने उपनिषद् हैं। आजकल इनकी संख्या थोड़ी है, तो भी जो आरण्यक और उपनिषद् हैं उनसे इस बात का स्पष्ट पता लगता है कि जो विद्या वेद मन्त्रों में है उसी को वे प्रकट कर रहे हैं।

व्याकरण, छन्द आदि

वेदों का संरक्षण करने के लिए व्याकरण शास्त्र बना। शुद्ध पाठ कौन-सा है, अशुद्ध पाठ कौन-सा और क्यों है, इसका ज्ञान व्याकरण से होता है। व्याकरण में

स्वर प्रकरण है। उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों से अर्थज्ञान ठीक होता है। यह सब व्याकरण के अन्तर्गत विषय है। गर्ग, शाकटायन, आदि अनेक व्याकरणकर्ता हुए हैं। इनमें अष्टाध्यायी नामक अन्तिम व्याकरण पाणिनि मुनि का है। कात्यायन ने वार्तिक बनाकर उनमें जो अपूर्णता थी वह दूर की है, पश्चात् इस पर पतञ्जलि का महाभाष्य है। पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि इन तीन मुनियों के ग्रंथों से संस्कृत-व्याकरण पूर्ण होता है। यह लौकिक और वैदिक भाषा का संपूर्ण व्याकरण है। जगत् में किसी भी भाषा का इतना उत्तम व्याकरण किसी ने नहीं बनाया। वेद की सुरक्षा के लिए इस व्याकरण की अत्यन्त आवश्यकता है।

छन्दः शास्त्र की इसलिए आवश्यकता है कि कौन-से मंत्र का कौन-सा छन्द है, इसका पता लगे और उस मंत्र के चरण कितने अक्षरों के और कितने होते हैं, इसका ज्ञान हो। मंत्र दो चरणों वाले, कई मंत्र तीन चरणों वाले, कई चार चरणों वाले, इसी तरह कई मंत्र अधिक चरणों वाले होते हैं।

गायत्री के ३ चरण, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती के ४ चरण, पंक्ति के ५ चरण चारचरणों की भी पंक्ति होती है, त्रिष्टुप् तथा जगती के चार चरण, प्रगाथ में दो मंत्र, अतिजगती ५ चरण, शक्वरी अष्टि, धृति के ७ चरण, अतिधृति के ८ चरण ऐसे चरणों में फर्क है। गायत्री के २४, उष्णिक् के २८, अनुष्टुप् के ३२, बृहती के ३६, पंक्ति के ४०, त्रिष्टुप् के ४४, जगती के ४८, प्रगाथ के ६८, ७६, ८०; अतिजगती के ५२, शक्वरी के ५६, अतिशक्वरी के ६०, अष्टि के ६४, अत्यष्टि के ६८, धृति के ७२, अतिधृति के ७६, कृति के ८०, प्रकृति के ८४ आकृति के ८८, विकृति के ९२, संकृति के ९६, अभिकृति के १०० तथा उपकृति के १०४ अक्षर होते हैं। यह तो सर्वसाधारण गणना है। इनमें भी विशेष भेद होते हैं। ऊपर गायत्री के तीन पाद और २४ अक्षर होते हैं ऐसा सर्वसाधारण नियम कहा है, पर इसमें ११ भेद हैं। देखिए—

गायत्री	ह्रसीयसी	१९	अक्षर	६×६×७	अक्षरों वाले	३ पाद
"	विपरीता	"	"	७×६×६	"	"
"	अतिनिचृत्	२०	"	७×६×७	"	"
"	पाद	२१	"	७×७×७	"	"
"	वर्धमाना	"	"	६×७×८	"	"
"	प्रतिष्ठा	"	"	८×७×६	"	"
"	"	२४	"	८×८×८	"	"
"	उष्णिग्गर्भा	"	"	६×७×११	"	"
"	यवमध्या	"	"	७×१०×७	"	"

"	पद पंक्तिः	२५	"	५×५×५×४×६ " "
"	"	२६	"	५×५×५×५×६ " "

इस तरह अन्य छन्दों के भी अनेक भेद होते हैं। इतना सूक्ष्म विचार छन्द-शास्त्र ने किया है। इस कारण वेद मंत्र में किस मंत्र के कितने पाद और प्रत्येक पाद में कितने अक्षर होते हैं, यह निश्चित हुआ है। एक अक्षर भी इस कारण इधर-उधर नहीं हो सकता। प्रत्येक मंत्र के अक्षर गिने हुए हैं, इतना ही नहीं, परंतु प्रत्येक पाद के भी अक्षर गिने हुए हैं। वेद की रक्षा के लिए ऋषियों ने इतना भारी प्रयत्न किया है।

ज्योतिष

ज्योतिष शास्त्र खगोल विद्या का शास्त्र है। इसमें सूर्यादि गोलकों की गति की गणित रहती है। वेद में कई मन्त्रों में ज्योतिष विषयक उल्लेख आते हैं। उनका अर्थ इस ज्योतिष शास्त्र से विदित होता है। इसलिए वेद संरक्षण में ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता है। जो इस ज्योतिष को नहीं जानता वह ज्योतिष विषयक मन्त्रों का अर्थ केवल शब्द ज्ञान से नहीं जान सकता। यदि ज्योतिष शास्त्र की सहायता न लेते हुए कोई उन मन्त्रों का अर्थ करेगा तो वह अर्थ गलत होगा। इसलिए वेदानुसंधान करने वालों को ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। ज्योतिष शास्त्र ने कई वेद मन्त्रों का अर्थ निश्चित किया है।

निघण्टु और निरुक्त

वैदिक पदों का कोष निघण्टु है और वैदिक पदों का गुह्यार्थ किस रीति से जानना चाहिए—यह निरुक्त में बताया है। उदाहरणार्थ, कुछ पदों का नैरुक्त अर्थ देखिए। इसके देखने से पता लगेगा कि निरुक्त का कितना उपयोग है—

अग्निः कस्मात्। अग्रणीर्भवति। निरु०

"अग्नि किससे बनता है। अग्नि अग्रणी होता है।" अर्थात् पहिले 'अग्रणी' था, उसका संक्षिप्त नाम अग्नि बना। यह कैसे बना, देखिए—

अग्रणी = अग्र्नीः = अग्नि = अग्नि

अग्रणी का अर्थ अग्रतक ले जाना है (अग्रं नयति, अग्रे नयति वा)। नेता अग्रणी कहलाता है, इसका कारण यह है कि वह अपने अनुयायियों को सिद्धि तक पहुंचा देता है। बीच में ही नहीं छोड़ता। यह अग्नि पद का रहस्यार्थ है। इस तरह कई पदों की व्युत्पत्तियां निरुक्त में बतायी हैं जिनको देखने से वेद मन्त्र के

रहस्यार्थ में मनुष्य प्रगति कर सकता है। निघण्टु में पद दिए हैं और पदों के गणों का अर्थ दिया है। निरुक्त में पदों का गूढ़ार्थ खोजने की कुंजी बतायी है। इन दोनों शास्त्रों ने वेद का अर्थ की दृष्टि से संरक्षण किया है।

निरुक्त में जो अर्थ कियें हैं, उनके सूचक मन्त्र भाग वेद में हैं। उनकी खोज करके निरुक्त का सम्पादन करना चाहिए और उन मन्त्र भागों को यथास्थान देकर, यह निरुक्त का निर्वचन इस मन्त्र के आधार से किया है, यह बताना चाहिए। निरुक्त का ऐसा संस्कार प्रकाशित होने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अब हमें क्या करना चाहिए ?

वेद को सुरक्षित रखने के लिए अब हमें क्या करना चाहिए ?

१. चारों वेदों की मुद्राएं (ब्लाक) अति शुद्ध रीति से तैयार करनी चाहिएं। एक भी अशुद्धि न रहे, ऐसी व्यवस्था करके ये ब्लाक बनाए जाँय। उत्तम तांबे के पत्रे पर ये ब्लाक बनाए जाएं, तो इनसे लाख दो लाख प्रतियां अच्छी तरह छापी जा सकती हैं। अर्थात् ऐसा करने से वेद-मुद्रण में कुछ भी त्रुटि होने की सम्भावना नहीं रहेगी।

२. दूसरी महत्त्व की बात गह है कि चारों वेदों की ध्वनि-मुद्राएं बनाना। इससे वेदपाठ किस तरह करते हैं इनका ज्ञान सबको होगा। टेप रिकार्डर के आविष्कार से अब यह काम बहुत सरल हो गया है।

३. इसके पश्चात् पदपाठ तथा अन्वय पाठ सहित शुद्ध मूल वेद छापना। यह नित्य पाठ के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय में भी इससे अच्छी पढ़ाई हो सकेगी। आज की वेद पढ़ाई की कठिनता इससे दूर होगी।

४. अनुवाद समेत वेदों का मुद्रण करना। ऊपर मन्त्र, बीच में अन्वय और नीचे अर्थ—इस तरह की पुस्तकें चारों वेदों की होनी चाहिएं। यदि वेंदों को सर्व-साधारण तक पहुंचाना है, तब तो ऐसा मुद्रण करना आवश्यक है।

५. इसके पश्चात् वेद मंत्र या वचन विषयवार छांटकरउ नके संग्रह अर्थ और स्पष्टीकरण के साथ प्रकाशित होने चाहिए। वैयक्तिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय जीवन आदि के सभी विषयों के सम्वन्ध में जितने जहां वचन चारों वेदों में हों, वह सब इस संग्रह ग्रन्थ में मिलने चाहिए। एक भी वचन छूटना नहीं चाहिए। इस ग्रंथ से वेद धर्म के स्वरूप का ज्ञान यथार्थ रीति से हो सकेगा।

प्राचीन समय में मनुष्य के पास समय बहुत था, वैसा इस समय नहीं है। इसलिए जब तक एक-एक विषय के मन्त्र प्रकरणशः संग्रहीत नहीं किए जाएंगे, तब

तक वेंद का धर्म प्रत्येक घर तक पहुंचने की कोई सम्भावना नहीं है। यह सब कार्य निष्पक्ष विद्वान् ८/१० वर्षों में कर सकते हैं। इस कार्य के लिए दस लाख रुपए की एक 'वेदनिधि' बननी चाहिए जिस निधि से यह कार्य होता रहे।

इतना होने के पश्चात् वेद का अध्ययन और अध्यापन—अच्छी तरह हो सकेगा और कोई कठिनता इसमें नहीं रहेगी। आज वेंद की पढ़ाई न होंने का कारण यह है कि ये साधन ग्रंथ वने नहीं हैं। जब ये ग्रन्थ वनेंगे, तब कोई कठिनता रहने की संभावना भी नहीं होगी।

जो वेद के प्रेमी हैं, वे इस पर विचार करें और इस भार को उठावें।
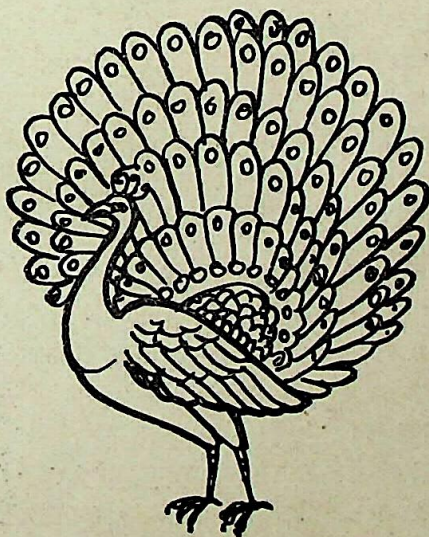
वेद को विश्वजनीन, आलमगीर और सार्वभौम सिद्ध करने के लिए आवश्यक है कि उसे उस रूप में प्रतिष्ठित किया जाए। वेद ने विश्व के स्तर पर पांच माताओं का उल्लेख किया है : विश्वंभरा भूमि माता, वरदा वेद माता, विश्ववारा संस्कृति, विश्व भाषा संस्कृत और विश्वधायसी गौमाता। अपने प्राणों की वलि देकर भी इन पांचों माताओं की रक्षा करना और इन पर किसी व्यक्ति या एक देश का अधिकार न होने देना विश्वसाम्राज्य की पहली शर्त है।

गत वर्ष श्री स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती ने नैरोवी (केनिया) में २४ अक्तूबर को संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस पर 'विश्वभृत् यज्ञ' का आयोजन करके वैदिक धर्म के इसी विश्वरूप को उजागर किया था। उस यज्ञ के अधिष्ठाता और विश्व-दिवस सम्मेलन के अध्यक्ष पद से स्वामी जी ने जो भाषण दिया, उसे हम यहां दे रहे हैं।

विश्व की पांच माताएं और विश्वभृत् यज्ञ

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती
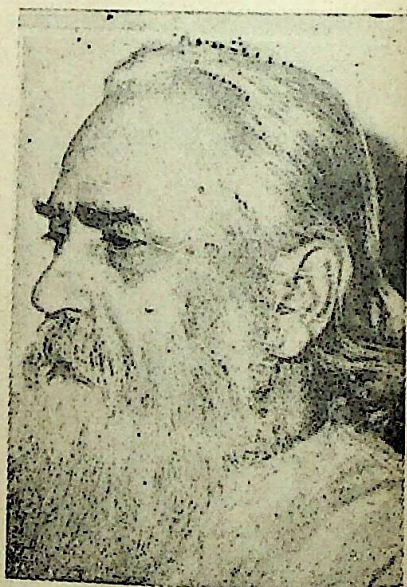
अक्तूबर मास की २४ तिथि का शुभ दिवस विश्व के सभी राष्ट्रों के लिए शान्ति का सुखद सन्देश लेकर आया है। यह दिन विश्व भर के राष्ट्रों से यह पूछता है, कि क्या तुम संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनने के योग्य हो ? क्या तुम में परस्पर सहयोग और सहानुभूति है ? क्या कहीं किसी राष्ट्र का मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं आर्थिक शोषण तो नहीं हो रहा ? धरती पर कहीं कोई ऐसा राष्ट्र तो नहीं जो परतंत्रता की वेड़ियों में जकड़ा हुआ हो ? क्या तुम्हारे कारण दूसरा राष्ट्र भयभीत और आतंकित तो नहीं है ? ऐसा तो नहीं कि इस

नीलाकाश पर पुनः युद्ध के वादल मंडराने लगे हों ? क्या राष्ट्रों की विशाल निर्माण शालाओं में अणु और उद्जन बम जैसे मारक एवं संहारक अस्त्र शस्त्रों का निर्माण तो नहीं हो रहा ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर न की वजाय हां में है, तो सभी के लिए चिन्ता का विषय है। इस पर विश्व के सारे राष्ट्रों को पुनर्विचार करना होगा।

इस शुभ अवसर पर जहां विश्व के सभी राष्ट्रों को, राष्ट्रों की जनता को, उक्त प्रश्नों पर विचार करना है, वहां केनिया राष्ट्र को और उस की जनता को भी विचार करना है। यह सर्व विदित है कि आर्य समाज, केनिया राष्ट्र की जनता का न केवल अभिन्न अंग है अपितु उत्तमांग भी है। जो सदैव सजग प्रहरी की भांति राष्ट्र की शिक्षा, संस्कृति, धर्म और चरित्र के उत्थान में अग्रसर रहा है। सो इस अवसर पर भी केनिया राज्य की आर्यसमाजों ने, उनकी शासन कर्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया, कि एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया जाए जिसका नाम **विश्वभृत** हो। जिसके माध्यम से न केवल राष्ट्र के वायुमण्डल को सुरभित किया जाए, न केवल राष्ट्र की गिरि गुहाओं को वैदिक ऋचाओं से प्रतिध्वनित किया जाए, अपितु वेद के आलोक में उपरिवर्णित ज्वलन्त प्रश्नों पर प्रकाश डाला जाए। आइए! हम विश्वभृत् यज्ञ में दीक्षित होकर पुण्यार्जन करें।

वन्धुओ ! आपको वेदों का सन्देश सुनाने से पूर्व **'विश्वभृत्'** शब्द का अर्थ सुनाना आवश्यक समझता हूं। विश्व-भृत् दो शब्दों से मिलकर बना है। एक विश्व और दूसरा भृत् शब्द। विश्व शब्द का अर्थ है -संसार अथवा वर्ल्ड, और भृत् शब्द का अर्थ है, धारण करना पोषण करना। दोनों को मिलाकर अर्थ हुआ— विश्व का धारण और पोषण करना। इस प्रचलित अर्थ को जान लेने पर भी इस का गंभीरार्थ जानना शेष है। वास्तव में विश्व की अन्य भाषाएं संस्कृत शब्दों की व्याख्या करने में असमर्थ हैं, अतः विवश होकर हमें संस्कृत भाषा की ही शरण लेनी होगी। उसी से पूछना होगा कि संसार को विश्व क्यों कहते हैं। इसका उत्तर यह मिलेगा कि संसार को विश्व इसलिए कहते हैं कि इसमें प्राणि मात्र को प्रवेश करने का अधिकार है। जिस धातु से 'विश्व' शब्द बना है उसका अर्थ है प्रवेश, टु एण्टर, इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व के मुख्य द्वार पर लिखा होगा—'स्वागतम्, वैलकॅम्। उसमें प्रवेश मिलते ही व्यक्तियों को विशः और उस भूभाग को विश्व कहा जा सकेगा। यदि वहां किसी का प्रवेश नहीं, कोई विशः नहीं, तो विश्व भी नहीं। विश्व भी ब्रह्म की भांति व्यापक संस्था है। जिसमें सब हैं और जो सब में है। वेद के शब्दों में विश्वराट् कहता है—विशोमेऽङ्गानि सर्वतः-यजु २०.८: सभी प्रजाएं मेरा अंग हैं और मै विश्व के अंग भूत प्रति व्यक्ति में प्रतिष्ठित हूं—**प्रतिक्षत्रे, प्रतिष्ठामि राष्ट्रे, प्रत्यश्वेषु, प्रतिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रतिष्टाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु।** मैं ही विश्व की क्षत्र शक्ति में, प्रत्येक राष्ट्र में, प्रत्येक अश्व में, गौओं में, प्रत्येक आत्मा में, यहां तक कि हर श्वास श्वास में प्रतिष्ठित हूँ। मेरा और इनका अंगांगी भाव सम्बन्ध है। न तो मेरे बिना कोई प्रवेश देगा और न इनके बिना मुझे कोई विश्व कहेगा। हमारा परस्पर आधार-आधेय सम्बन्ध रहता है। दोनों परस्पर एक दूसरे

का धारण पोषण करेंगे। तभी हमारी संज्ञा विश्वभृत् होगी। आओ मिलकर गायें 'जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैदत्त विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा। चन्द्र लोक को गति शील होने से संसार, जगत्, वर्ल्ड तो कह सकते है, परन्तु वहां सब का प्रवेश निषिद्ध होने से विश्व नहीं कह सकते। उसके द्वार पर प्रवेश निषिद्ध का पट्ट लगा है।

परिमामयी भूमिमाता

विश्व कहलाने का गौरव हमारी भूमि माता को ही है। उसका द्वार चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी से लेकर प्रभु की सर्वोत्कृष्ट रचना मनुष्य तक के लिए सदा सदा से खुला है। वह प्राणियों को प्रवेश ही नहीं, निवेश भी देती है। जन्म के लिए प्रवेश और मरणोपरान्त निवेश। सौभाग्य से अथर्व वेद के १२वें काण्ड के १म सूक्त की संज्ञा भूमि सूक्त है। उसमें भूमि को माता कह कर स्मरण किया गया है। प्राणियों को जन्म देने वाली माताएं कुछ समय तक भरण पोषण करती हैं और छोड़ देती हैं, मरणोपरान्त की तो कथा ही क्या। भूमि ऐसी माता है कि जन्म से मरण पर्यन्त कभी साथ नहीं छोड़ती और मरणोपरन्त भी अपनी क्रोड में समेट लेती है। इसी कारण उसके पुत्र वैदिक ऋचाओं के माध्यम से भूमि माता का स्तवन करते हुए गाते हैं : **माता भूमि : पुत्रोऽहम्। विश्वम्भरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगतो निवेशिनी। वैश्वानरं बिभ्रती भूमिः।** हे भूमि तू हमारी माता है और हम तेरे पुत्र हैं। तू सबको प्रवेश देकर उनके धारण पोषण का भी प्रवन्ध करती है। तू विश्वम्भरा है। निवास देने वाले साधनों की खान है। तू ही हमारी प्रतिष्ठा है। जड़ जंगम का निवेश स्थान है। **उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु।** तेरी गोदियां हम प्राणियों के लिए निरामय और यक्ष्मा रहित हों। **त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।** तुझ से उत्पन्न हुए तुझ पर ही विचरण करते हैं। तू ही दो पाये और चौपाये प्राणियों का भरण पोषण करती है।

इस सूक्त में भूमि माता का विश्वभृत् रूप अतिस्पष्ट है। वह विशम्भरा विश्वमाता है। विश्व धाया है। धारण और पोषण सामर्थ्य को परम कवि ने लगभग पच्चीस बार स्मरण किया है। आइये हम सभी पुत्र श्रद्धापूरित प्रणाम की अंजलि अर्पित करते हुए वेद के शब्दों में उच्चारण करें-**तस्यैः हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।** और कहें—**वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।** मां तेरे लिए सदैव प्राणों की बलि लिए तत्पर रहें।

विश्व मानुष

विश्वभृत् शब्द के विवेचन ने यह स्पष्ट हो गया कि धरती वासी सभी व्यक्तियों की संज्ञा विशः है। उनके सम्मिलन का नाम विश्व है। भूमि का नाम विश्वम्भरा है। ईश्वर का नाम विश्वम्भर है और यज्ञ का नाम **विश्वभृत्** है। संयुक्त राष्ट्र संघ की वैदिक संज्ञा **विश्वभृत्** है। उसके सदस्य एक प्रकार से विश्वभृत् यज्ञ के सदस्य हैं। उन सदस्यों का कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे विश्व का निर्माण

करें जिससे विश्व के प्रत्येक विश:=सदस्य का भरण पोषण हो। विश्व का कोई भी विड् (सदस्य) अज्ञान, अन्याय, अभाव, आलस्य नामक सार्वभौम शत्रुओं से पीड़ित न हो।

यह हर्ष का विषय है कि विश्व में प्रथम बार विश्वभृत् यज्ञ का आयोजन हो रहा है। इसका श्रेय केनिया राष्ट्र की राजधानी नैरोबी को प्राप्त है। विश्वभृत् यज्ञ के लिए निर्मित वेदी इस बात का प्रमाण है कि इसके आयोजकों के मस्तिष्क में क्या कल्पना है। केन्द्र में बना हुआ कुंड भूमि का प्रतीक है। चारों ओर बने हुए कुण्ड केन्द्र और परिधि को जोड़ने वाले अरे हैं। चक्र की परिधि रेखा सूर्यचक्र का गमन पथ है। जिस प्रकार काल का रथ सतत प्रवहमान है उसी प्रकार विश्वभृत् संस्था का शासन-चक्र भूतल पर एक छोर से दूसरे छोर तक सतत प्रवहमान रहना चाहिए। अन्तरिक्ष में सूर्य का एक छत्र शासन है। भूमि पर भी एक छत्र शासन हो। ऋग्वेद में ऐसे व्यक्ति के लिए कहा है—**एक राडस्य भुवनस्य। राजाः राष्ट्राणाम्।** ऋ ८.३७,१;

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वेदों में न केवल ऐसे शासन का उल्लेख मात्र है, अपितु उसका सांगोपांग वर्णन है। उसके सदस्य कौन हों। उसके शासक कैसे हो। उनका वरण कैसे हों। उसकी सेनाएं कैसी हों। उसका कोष अपना हो। आय के प्राकृतिक स्रोतों पर उसका अक्षुण्ण अधिकार हो, इत्यादि।

वेदों में ऐसे उदात्त व्यक्तियों का वर्णन है जिनकी संज्ञा विश्व मानुष है। उनसे कहीं भी, कभी भी, कोई भी यह नहीं पूछ सकता कि वे किस जाति, रंग, रेस और राष्ट्र के व्यक्ति हैं। न वे इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य होंगे। उनके लिए कोई भौतिक, जलीय और आकाशीय सीमाएं न हों। उनकी सर्वत्र अबाधगति हो। अबाध प्रवेश हो। उनके आगे राष्ट्रों की कृत्रिम सीमाएं आड़े न आएं। ऐसे ही व्यक्ति संयुक्त राष्ट्र संघ में बैठने के पात्र हैं। आज तो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य अपने अपने राष्ट्रों के लेबल लगाए होते हैं। उनके सामने स्वराष्ट्र हित होता है, न कि विश्वहित। अत: आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्येक सदस्य विश्वमानुष हो। उसका एक ही उद्घोष हो—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। समस्त वसुधा ही मेरा परिवार है।

विश्वप्रजा—

वेदों में न केवल एक राट् का वर्णन है अपितु विश्व प्रजा का भी वर्णन है। उन्हें वेद में विश्वमानुषा: (citizon of World) अर्थात् सार्वभौम प्रजा कहा है, जिनके अधिकार में सार्वभौम सम्राट् का चुनाव करना है। विश्व सम्राट् का विश्ववार विशेषण इस बात का प्रमाण है। विश्व प्रजा का विशेषण विश्वमना उनके

उत्तर दायित्व पर प्रकाश डालता है। यही नहीं, वेदों में उन सार्वभौमिक तत्त्वों और सिद्धान्तों का प्रदिपादन हुआ है जिस पर विश्व आधृत है। भूमि सूक्त के प्रथम मन्त्र में उनका उल्लेख हुआ है जो संख्या में छः है (१) सत्य (२) ऋत (३) दीक्षा (४) तप (५) ब्रह्म (६) यज्ञ। मंत्र में कहा है कि ये छः तत्त्व पृथिवी को धारण करते हैं। यहाँ पृथिवी से अभिप्राय है पृथिवी पर बसे हुए प्राणी। सभी मनुष्य उक्त छः धर्मों के धारण करने के लिए परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध हों तभी विश्वभृत् होगा, विश्व का भरण होगा।

उपसंहार रूप में कुछ सार्वभौम वैदिक सूत्रों का उल्लेख कर देना चाहता हूं जिसमें आवद्ध होकर विश्व शांति की संभावना की जा सकती है।

१. संसार में प्रवेश मिलने के कारण प्रजाएं विशः हैं और उनके सम्मिलित रूप का नाम विश्व है। **विश्वमन्यग्निविशते यदेजति। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः।**

२. विश्व के सभी व्यक्ति एक ही माता पिता के पुत्र हैं। **विश्वे अमृतस्य पुत्राः। माता भूमिः पुत्रोहम्। विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।**

३. एक ही पिता के पुत्र होने से हम सभी भाई भाई हैं, न कोई बड़ा है न कोई छोटा। **अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभाग्य।**

४. विश्वपिता ने भूमिमाता के समान ही ज्ञानमाता का भी प्रस्ताव किया था। वही सबकी वरदा वेद माता है। **स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्।**

५. विश्व की संस्कृति भी एक है जिससे अन्य सभी संस्कृतियों का जन्म और प्रलन हुआ। उसका नाम **विश्ववारा संस्कृति है। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।**

['विश्व वारा' संस्कृति पर एक टिप्पणी यहां अनुपयुक्त न होगी। १. 'संस्कार विधि' [गृहस्थाश्रम 'शाला प्रवेश] में ऋषि ने विश्ववारा का अर्थ दिया है--जिसके द्वार सभी तरफ से खुले हों ताकि वायु का उन्मुक्त संचार सदा बना रहे। २. रवीन्द्र नाथ ठाकुर की दृष्टि में जहां विश्व हो एक नीड अविभक्त मानवी दीवारों से।' ३. गांधी जी के शब्दों में "मैं नहीं चाहूंगा कि हर तरफ दीवारों से मेरा दम घुटने लगे। मैं तो चाहूंगा---तूफान भी आएं, किन्तु उनसे मेरे पैर न उखड़ जाएं।" सं०]

६. १. विश्वंभरा भूमिमाता २. वरदा वेद माता ३. विश्ववारा संस्कृति और ४. विश्वभाषा संस्कृत पर उसके पुत्रों का समान अधिकार है और पुत्रों का कर्तव्य है कि प्राणों की बलि देकर भी उनकी रक्षा करें।

७. सात्विक आहार दुग्धादि के अक्षय स्रोत विश्वधायस् गौमाता को विश्व पशु घोषित किया जाए।

८. इन पञ्चविधि माताओं से उत्पन्न विभिन्न वसु धाराओं की रक्षा और तुल्य

विनिमय के लिए विश्वभृत् संस्था का सुदृढ़ शासन हो, उसी का इनके अक्षय स्रोतों पर एकाधिपत्य हो ।

उपर्युक्त वैदिक सूत्रों का प्रयोग होने के साथ विश्वभृत् संस्था की सर्वलघु इकाई परिवार से लेकर राष्ट्र तक के सभी सदस्य परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध हों और व्रत लें—

१. मैं विश्व को निवास देने वाली परमसत्ता ईश्वर में विश्वास करता हूं । **ईशा वास्यमिदं सर्वम् ।**

२. मैं फलासक्ति को छोड़कर कर्म करते हुए जीना चाहता हूं । **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् ।**

३. मैं मानव धर्म से आश्वस्त हूं अतः मनुष्य बनूंगा । **मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ।**

४. मैं प्राणि-मात्र के आत्मवत् व्यवहार को धर्माचरण मानूंगा । **सर्वाणि भूतान्यात्मैवाद्विजानतः ।**

५. मैं प्राणि-मात्र को मित्र दृष्टि से देखने में पहल करूंगा । **मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।**

६. मैं असत्य के छोड़ने और सत्य के ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहूंगा । **इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।**

७. मैं सत्य ही बोलूंगा और सत्य ही आचरण करूंगा । **सत्यमूचुर् नर एवा हि चक्रुः ।**

८. मैं मनुष्य मात्र की रक्षा कर उन्हें अभयदान दूंगा । **पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वतः ।**

९. मैं अकेले खाना पाप मानता हूं । **केवलाघो भवति केवलादी ।समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः ।**

१०. मैं विश्वव्रत के साथ अनन्य व्रत रहूंगा । मेरा उक्त मन्तव्य होगा ।

जब हम उपर्युक्त वैदिक-सूत्रों तथा पारस्परिक बन्धन-सूत्रों में आबद्ध हो जाएंगे तो निश्चित ही ऐसे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का निर्माण कर सकेंगे जिसके सम्बन्ध में विश्वकवि रवीन्द्र के गीत सार्थक होंगे । तद् यथा—

Where the mind is without fear
and the head is held high;
Where khowledge is free;
Where the world has not been broken up
into fragments by narrow domestic walls;
Where words come out from the depth
of truth;

Where tireless striving stretches its arms
towards perfection
Where the clear stream of reason has not lost
its way into the dreary desert sand of
dead habit;
Where the mind is led forword by Thee
into ever-widening thought of action;
Into that Heaven of Freedom,
My Father, let my country awake.

जहां अभय मन, मस्तक ऊंचा रहे अजेय उदात्त
जहां ज्ञान की विनिर्मुक्त नित धारा वहे प्र-भात
जहां विश्व हो 'एक नीड़' अविभक्त मानवी दीवारों से
जहां गिरा हो प्रस्पन्दित, 'शब्द ब्रह्म' की हृत् तारों से
जहां अथक श्रम वढ़े निरन्तर परम पूर्णता की ही ओर
जहां न बुद्धि [विमल निर्झरिणी] वृत्ति-मरुस्थल लीन विभोर
जहाँ मनोमय पगे अनारत प्रतिवोधित नव मनन कर्म में
प्रभो, मनुज की आत्मा जागे उस स्वराष्ट्र स्वर्-व्योम धाम में।

—मूल बंगला से

अन्त में आइये ईश्वर से हम प्रार्थना करें और उसके आदेशानुसार आचार, उच्चार, विचार में समान होकर विश्वभृत्-यज्ञ में दीक्षित हो।
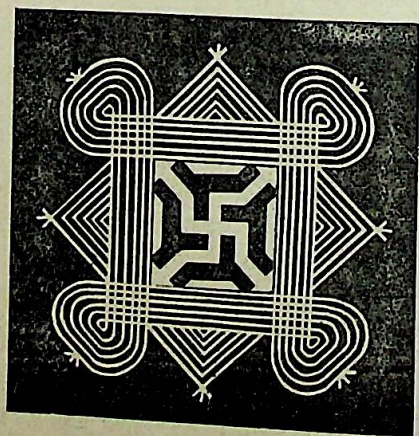
टंकारा सहायक समिति, मंदिर मार्ग नई दिल्ली-१ को टंकारा ट्रस्ट सहायतार्थ प्राप्त दान सूची

१.	श्री रामभज, दिल्ली	११·००
२.	" तीरथराज, दिल्ली	११·००
३.	" प्रेमनाथ चड्ढा, दिल्ली	१०१·००
४.	" कृष्णलाल आर्य, दिल्ली	५१·००
५.	" नवनीत लाल, दिल्ली	१०२·००
६.	" ओमप्रकाश आर्य, दिल्ली	११·००
७.	" सत्यभूषण, ग्रीनपार्क	२१·००
८.	" बी. एस. वहल, चंडीगढ़	२५·००
९.	" प्रि. एस. राय मेहरचन्द D.A.V. महिला कालेज चंडीगढ़	१०१·००
१०.	" शान्तिलाल सूरी	१०१·००
११.	" चमन लाल, दिल्ली	११·००
१२.	" हिन्दुस्तान रोड लाइन्स नई दिल्ली	२५१·००
१३.	" प्रो० वेदव्यास, नई दिल्ली	१०१·००
१४.	" आर्य समाज, बालकृपाल नगर अलवर	३०·००
१५.	" आर्य समाज, फतहनगर	५१·००
१६.	" आर्य समाज, रामगढ़	२१·००
१७.	" वैद्य सत्यदेव, पटियाला	१०·००
१८.	" रामशरणदास आर्य, नई दिल्ली	११·००
१९.	" पं० रामकृष्ण, नई दिल्ली	३१·००
२०.	" दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मंडल	१००·००
२१.	" के. एल. सूरी, नई दिल्ली	५१.००
२२.	" मंत्री आर्यसमाज, पीलीबंगा राजस्थान	१०·००

२३.	" आर्यसमाज, हनुमान गढ़ टाउन राजस्थान	५·००
२४.	" आर्य समाज बस्ती हरफूल सिंह दिल्ली	५००·००
२५.	" एच. आर. खन्ना, दिल्ली	५१·००
२६.	" प्रिंसिपल हंसराज महिला महाविद्यालय जालन्धर	२५·००
२७.	" आर्य समाज, तिलक नगर नई दिल्ली	२०२·००
२८.	" प्रि. त्रिलोकीनाथ जी, चंडीगढ़	५१·००
२९.	" आर्य समाज, झालू	२५·००
३०.	" आर्य समाज, पिलानी	३१·००
३१.	" आर्य समाज, कपूरथला	३००·००
३२.	" जगत नारायण, हिन्द समाचार जालन्धर	५१·००
३३.	" आर्य समाज कोरबा (म. प्र.)	५००·००
३४.	" प्रि. डी. ए. वी. कालेज जालन्धर	२५·००
३५.	" भोलाराम जी, महरोली दिल्ली	५१·००
३६.	" दरबारीलाल जी, दिल्ली	२५·००
३७.	" प्रि. दयानन्द कालेज, हिसार	२१·००
३८.	" आर्य समाज, नागौर (राजस्थान)	२१·००
३९.	" सत्य प्रकाश गुप्त, मक्खनपुर	२१·००
४०.	" लालमन आर्य, हिसार	५१·००
४१.	" अश्वनी कुमार जी, मेरठ कैन्ट	२५·००
४२.	" आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा, रोहतक	१०१·००
४३.	" आर्य समाज, टोहाना	५१·००
४४.	" के. सी. सुब्रह्मण्यम तेनाली	५१·००
४५.	" आर्य समाज, टाउन हाल शाहजहांपुर	५१·००
४६.	" वीरसेन जी मुजफ्फर नगर	५०·००
४७.	" श्रीमती तारावैद्य, दरियागंज दिल्ली	३०·००
४८.	" मंत्रीजी आर्य समाज (सुगरमिल) खतौली	२५·००
४९.	" श्रीमती शान्ता भगत, मुरादाबाद	५१·००
५०.	" M/S. जगमग लाइट, कलकत्ता	१०१·००
५१.	" श्रीमती ईश्वरीदेवी, नई दिल्ली	२१·००
५२.	" लीलावती, नई दिल्ली	२१·००
५३.	" प्रि. माता मिश्री देवी D.A.V. महिला कालेज-गिद्दड़वाहा	५१·००
५४.	" प्रि. डी. ए. वी. हा. सै. स्कूल, कादियां	५१·००
५५.	" आर्य समाज, रामनगर (नैनीताल)	११·००

५६.	" आर्य समाज जवाहर नगर, लुधियाना	१०१·००
५७.	" आर्य समाज विलासपुर (म. प्र.)	५१·००
५८.	" वूलीरामजी, औरंगाबाद	१५ ००
५९.	" आर्य समाज गोंदिया (म· प्र.)	१०० ००
६०.	" स्त्री आर्य समाज सावुन वाजार. लुधियाना	१०१·००
६१.	" आर्य समाज, दरभंगा कालोनी इलाहावाद	१२५·००
६२.	" आर्य समाज कटियाटोला, शाहजहाँपुर	५५ ००
६३.	" प्रि, श्री लालवहादुर शास्त्री आर्य महिला कालेज, वरनाला	५१·००
६४.	" स्त्री आर्य समाज, मेरठ कैन्ट	२५·००
६५.	" अनरनाथ, सिकन्दरपुर	२५·००
६६.	" श्रीमती शान्ता आर्या, शाहजहाँपुर	२५·००
६७.	" स्त्री आर्य समाज, कटियाटोला शाहजहाँपुर	२५·००
६८.	" आर्यसमाज रूहालकी दयालपुर	२५·००
६९.	" आर्य समाज गोठरा (राज०)	२१·००
७०.	" आर्य समाज मोरिण्ड़ा	५१·००
७१.	" स्त्री आर्य समाज आदर्शनगर, जयपुर	२१·००
७२.	" आर्य समाज टीला सहवाजपुर	२५ ००
७३.	" आर्य समाज सरस्वती विहार दिल्ली	५१ ००
७४.	" श्रीमती सावित्रीदेवी, नई दिल्ली	२१·००
७५.	" हरिचन्द्र जी, पटेल नगर, नई दिल्ली	१०१ ००
७६.	" आर्य समाज हिण्डौन सिटी (राज.)	१००·००
७७.	" M/S. सुगन्ध अगरवत्ती, मैसूर	१०१·००
७८.	" वेदप्रकाश सलूजा जी, मुरादावाद	१००१·००
७९.	" M/S. दीवान चन्दजी नई दिल्ली	१५१·००
८०.	" स्वामी श्रद्धानन्द ऑल इंडिया मेमोरियल ट्रस्ट, नई दिल्ली	५००·००
८१.	" रतनचन्द सूदजी, नई दिल्ली	१०००·००
८२.	" ओ. पी. गोयल जी नई दिल्ली	११००·००
८३.	" तारानाथ, जौनपुर	२५·००
८४.	" कंवरनैन देवराज आर्य वेगा	२५·००
८५.	" आर्य समाज माडल हाउस, जालन्धर सिटी	३५·००
८६.	" प्रि. विनीता खरे, दयानन्द आर्य विद्यालय, रीवा	२१·००
८७.	" रामभरोसेलाल गुप्त मनिहार	२५·००
८८.	" आर्य समाज, अलावलपुर	१०१·००

८६. "	प्रि. माता हरकौर आर्य माडल स्कूल पानीपत	१३१·००
९०. "	प्रि. हंसराज महिला महाविद्यालय जालन्धर सिटी	२५१·००
९१. "	शीतलचन्द्र जी, जयपुर	२५·००
९२. "	टी. आर. वग्गा, दिल्ली	२१·००
९३. "	आर्य समाज डिफेंसकालोनी नई दिल्ली	२५१·००
९४. "	इन्द्रराज जी, नैणा तातारपुर	१०१·००
९५. "	लाला दीवानचन्द्र ट्रस्ट, नई दिल्ली	१०००·००
९६. "	श्रीमती शीलाकपूर, नई दिल्ली	१०·००
९७. "	शीलादेवी, नई दिल्ली	११·००
९८. "	कौशल्लादेवी, नई दिल्ली	५१·००
९९. "	स्त्री आर्य समाज निजामुद्दीन ईस्ट	५१·००
१००. "	आर्य समाज निजामुद्दीन ईस्ट	१०१·००
१०१. "	प्रि. दयानन्द कालेज, हिसार	१०१·००
१०२. "	प्रि. एस. पी. मल्होत्रा, भटिण्डा	३१·००
१०३. "	आ. स. थापर नगर मेरठ	२०१·००
१०४. "	आर. सी मुंजाल, प्रि. डी. ए. वी. हा. सै., स्कूल बोकारो स्टील सिटी	५१·००
१०५. "	आर्य समाज साउथ एक्सटेंशन-I	१०१·००
१०६. "	सत्य प्रकाश वन्सल, चंडीगढ़	१०१·००
१०७. "	आ. स. ग्रीनपार्क,, नई दिल्ली	१०१·००
१०८. "	आ. स. चूनामण्डी, नई दिल्ली	२५०·००
१०९. "	आ. स. हनुमान रोड नई दिल्ली	५०१·००
११०. "	आ. स. राजौरीगार्डन, नई दिल्ली	५०१·००
१११. "	आ. स. पटेल नगर, नई दिल्ली	२५१·००
११२. "	नानक चन्दजी, नई दिल्ली	२१·००
११३. "	श्रीमती लाजवन्ती जी, नई दिल्ली	१००·००
११४. "	लक्ष्मण सिंह आर्य, दिल्दार नगर	२५·००
११५. "	आर्य समाज किरावली (आगरा)	२५·००
११६. "	मंशाराम आर्य, फजलपुर (मेरठ)	५२·००
११७. "	M/O कारगो क्लीयरिंग इन्टरनैशनल बम्बई-९	५१·००
११८. "	आर्य समाज, बहादराबाद	५१·००
११९. "	चौ. प्रतापसिंह जी, करनाल	२५१·००

१२०.	" रामभज वत्रा जी, दिल्ली	११००·००
१२१.	" पी. पी. परवानी, दिल्ली	११·००
१२२.	" हरकिशन लाल आनन्द, नई दिल्ली	५१·००
१२३.	" पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार, नई दिल्ली	१०१·००
१२४.	" आ. स. अनारकली	२५१·००
१२५.	" आ. स. जनकपुरी	१०१·००
१२६.	" वहरामदुआ नई दिल्ली	१००·००
१२७.	" आ. स. लाजपत नगर, नई दिल्ली	१२१·००
१२८.	" आ. स. हौज खास, नई दिल्ली	५१·००
१२९.	" हरवन्स सिंह खेर, नई दिल्ली	११००·००
१३०.	" वैद्य गुरुदत्त जी, नई दिल्ली	५१·००
१३१.	" आ. स. मीरानपुर कटरा	२५·००
१३२.	" आ. स. चिरमिरी	१००·००
१३३.	" आर्य समाज, ललितपुर	४२·००
१३४.	" गीतसिंह जी, लखनऊ	१०१·००
१३५.	" आर्य समाज, नरकटियागंज	२०·००
१३६.	" श्रद्धानन्द आर्य समाज, चिचौली	५४·००
१३७.	" महिला आर्य समाज, गुरदासपुर	१०१·००
१३८.	" आर्य समाज, वेलपुर	५१·००
१३९.	" प्रि. दयानन्द कालेज, शोलापुर	५०१·००
१४०.	" आर. एन. धींगरा, नई दिल्ली	११·००
१४१.	" आर्य समाज, धर्मकोट	५१·००
१४२.	" आर्यसमाज, विस्तेहा	५०·००
१४३.	" आर्य समज, धूलपेठ	५१·००
१४४.	" आर्य समाज, पटपड़गंज, दिल्ली	११·००
१४५.	" आर्य समाज, लालकुर्ती मेरठ	५१·००
१४६.	" आर्य समाज कासिमपुर	२५·००
१४७.	" आर्य समाज, धर्मशाला	५१·००
१४८.	" आर्य समाज, राजेन्द्रनगर नई दिल्ली	५००·००
१४९.	" महिला आर्य समाज, बिसौली	५१·००
१५०.	" आर्य समाज, पंचपुरी	२५·००
१५१.	" आर्य समाज, गवाँ	५१·००
१५२.	" जे. एस. मदान, नई दिल्ली	५१·००

१५३.	" होटल सी किंग, बम्बई	१०१·००
१५४.	" आर्य समाज, सत्भ्रावांरोड करौल बाग, नई दिल्ली	१०१·००
१५५.	" डा. ओमप्रकाश, अम्बाला सिटी	२५·००
१५६.	" आर्य समाज सदर, लखनऊ	२०·००
१५७.	" आर्य समाज, करीमाबाद	५१·००
१५८.	" आर्य समाज, कौडेली	१६·५०
१५९.	" वेद प्रकाश जी	२५·००
१६०.	" आर्य समाज सिरसा	२५·००
१६१.	" आर्य समाज, अंजार	१००·००
१६२.	" डी. वी. चोपड़ा, बम्बई	१०१·००
१६३.	" देवव्रत, वेदव्रत गुप्ता, नई दिल्ली	११००·००
१६४.	" वीरभान नारंग, पालम गाँव	३१·००
१६५.	" देवीदास गोपालदास, जम्मूतवी	१०१·००
१६६.	" प्रि. डी. ए. वी. मल्टी. हा. सै. स्कूल, अमृतसर	१०१·००
१६७.	" आर्य समाज शाहजहाँपुर	४१·००
१६८.	" प्रि. आर्य कन्या महाविद्यालय कलकत्ता	२०४·००
१६९.	" सेवाराम आर्य, दीवाल हेड़ी	१२·००
१७०.	" आर्य समाज, टेकरा	५१·००
१७१.	" आर्य समाज, आहूलाना	५१·००
१७२.	" आर्य समाज, वंगा	५१·००
१७३.	" आर्य समाज, रोसड़ी	६६·००
१७४.	" लोकनाथ मेहता, दिल्ली	१२·००
१७५.	" प्रि. मे. च. पोली. जालन्धर	१०१·००
१७६.	" रामजीदास मलिक, नई दिल्ली	१००·००
१७७	" जे. सी. मेहता एण्ड कं० नई दिल्ली	१०१.००
१७८.	" महिला आर्य समाज, मुरादावाद	१०१·००
१७९.	" आर्य समाज, पुखालियान	२५·००
१८०.	" आर्य समाज, खगड़िया	५५·००
१८१.	" आर्य समाज, बैकुण्ठपुर	५१·००
१८२.	" प्रि. डी. ए. वी. कालेज, अमृतसर	१०१·००
१८३.	" कु. वी. आनन्द, नई दिल्ली	२५·००
१८४.	" श्रीमती परमेश्वरी देवी, नई दिल्ली	१०·००
१८५.	" आर्य समाज कालकाजी, नई दिल्ली	१०१·००

१८६.	" प्रि. डी. ए. वी. कालेज पूण्ड्री	५१·००
१८७.	" आर्य समाज, जसपुर	२५·००
१८८.	" रामगोपाल अग्रवाल चिरनीपुखार	२५·००
१८९.	" आर्य समाज, सिरोही	५१·००
१९०.	" आर्य समाज, ताजगंज	५१·००
१९१.	" डा० सत्यपाल, घरोण्डा	५००·००
१९२.	" आनंददेव वानप्रस्थी, अम्बाला सिटी	२१·००
१९३.	" जगदीशचंद्र, अम्बाला सिटी	२१·००
१९४.	" हरवन्सलाल, अम्बाला सिटी	२१·००
१०५.	" सुरेन्द्र जी, अम्बाला सिटी	२१·००
१९६.	" डा० वेद प्रकाश गुप्त, अम्बाला सिटी	२१·००
१९७.	" महिला आर्य समाज, अम्बाला सिटी	३५·००
१९८.	" देवराज कोछड़, महेसाणा	२५१·००
१९९.	" श्रीमती सरस्वती देवी, नई दिल्ली	१०००·००
२००.	" मायावती गोवर्धन दास वेद-प्रचार न्यास, नई दिल्ली	११००·००
२०१.	" आर्य समाज, माडल टाउन, दिल्ली	१०१·००
२०२.	" यशपाल शास्त्री, नई दिल्ली	५१·००

ओ३म्
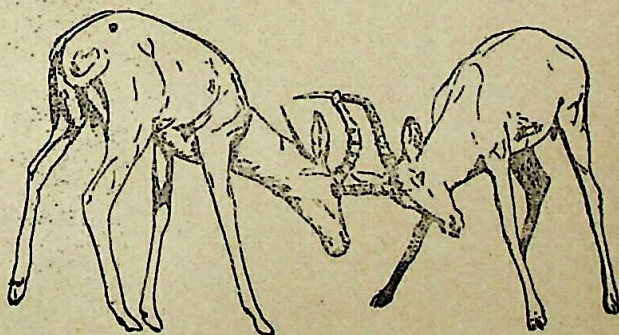
महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा
(गुजरात)

देहली कार्यालय : आर्यसमाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली ११०००१

आर्य समाजों, आर्य संस्थाओं एवं आर्य बन्धुओं की सेवा में महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा में हो रहे कार्य एवं निर्माण हेतु

50,000 रुपये की अपील

आप की सेवा में महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा में होने वाले कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। कृपया इसे ध्यान से पढ़ें और अपनी ओर से तथा अपनी संस्था की ओर से अपने गुरु की जन्मभूमि में होने वाले कार्यों में सहयोग देकर ऋषि के ऋण से उऋण हों।

इस समय महर्षि दयानन्द के जन्म स्थान टंकारा में ट्रस्ट की ओर से निम्न-लिखित कार्य सुचारु रूप से चलाये जा रहे हैं ;—

१. महर्षि दयानन्द के जन्म गृह का प्रबन्ध
२. महर्षि दयानन्द अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय
३. महर्षि दयानन्द गौ – संवर्धन केन्द्र
४. महर्षि दयानन्द सार्वजनिक पुस्तकालय तथा वाचनालय
५. दिव्य दयानन्द दर्शन चित्रगृह
६. महर्षि दयानन्द अतिथि गृह
७. स्वामी दयानन्द ब्रह्मचर्याश्रम
८. वेद प्रचार विभाग

टंकारा में जो उपदेशक विद्यालय चल रहा है उसमें २०-२५ के लगभग विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। जहाँ विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती हैं वहां उनके आवास, भोजन और वस्त्र आदि का सारा व्यय भी ट्रस्ट वहन करता

है। विद्यार्थियों को कोई व्यय नहीं करना पड़ता। स्नातक बनने पर ये विद्यार्थी केवल वेद प्रचार का कार्य ही करते हैं।

इस विद्यालय से लगभग १५० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करके भारत की भिन्न-२ आर्य समाजों में पुरोहित तथा वेद प्रचार का कार्य कर रहे हैं। उनके अच्छे कार्यों के लिए हमारे पास भिन्न-२ आर्य समाजों से प्रशंसा पत्र आते रहते हैं।

स्व० पं० अयोध्या प्रसाद जी वैदिक मिशनरी के विश्वविख्यात पुस्तकालय की हजारों हिन्दी और अंग्रेजी की पुस्तकें टंकारा पुस्तकालय को उनके परिवार ने दान में दी थीं ताकि आर्य विद्वान् उनसे लाभान्वित हो सकें। उन पुस्तकों को रखने के लिए अलमारियों और रैकों की नितान्त आवश्यकता है, लेकिन धनाभाव के कारण वे खरीदी नहीं जा सकीं। जो दानी महानुभाव पुस्तकालय के लिए अलमारियां किसी की पुण्य स्मृति में देना चाहे उस पर उनका नाम अंकित किया जायेगा।

टंकारा जाने वाली महिलाओं के लिए ५ स्नानगृह और ५ शौचालय बनाए गए थे। जिन पर लगभग ३०,००० रुपये व्यय हुआ है। अब ट्रस्ट ने यह निर्णय किया है कि पुरुषों के लिए भी इसी प्रकार ५ स्नानगृह और ५ शौचालय बनाए जाएं जिसके लिए ५० हजार रुपए की आवश्यकता है।

विनम्र निवेदन

आपसे निवेदन है कि इन सारे कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपना आर्थिक सहयोग दें। यह राशि आप चैंक, क्रास बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से 'टंकारा सहायक समिति' के नाम से आर्य समाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली—११०००१ के पते पर भिजवा सकते है।

आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप अपनी ओर से/अपनी आर्य समाज की ओर से/अपनी संस्था की ओर से अधिक से अधिक राशि अवश्य भेजने की कृपा करें। नोट : टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि कर-मुक्त होगी।

निवेदक :—मन्त्री, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग

	लेखक	मूल्य
१. सन्ध्या पर व्याख्यान	महात्मा हंसराज	४-५०
२. महात्मा हंसराज जीवनी	म० आनन्द स्वामी	६-००
३. सामवेद भाष्य	आचार्य वैद्यनाथ जी	२०-००
४. मुण्डकोपनिषद्	प्रि० दीवान चन्द	४-००
५. वेदोपदेश	,, ,, ,,	४-५०
६. जीवन ज्योति	,, ,, ,,	३-००
७. महर्षि दर्शन	,, ,, ,,	४-००
८. दयानन्द शतक	,, ,, ,,	५-५०
९. दयानन्द हिज लाईफ एण्ड वर्क	स्व० सूरजभान जी	३-००
१०. भक्ति सुधा	,, ,, ;,	६-००
११. वैदिक सत्संग		१-७५
१२. अमर स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ	सजिल्द	१५-००
,, ,, ,, ,,	अजिल्द	१२-००
१३. दयानन्द दिव्य दर्शन	क्षितीश वेदालंकार	५१-००
१४. फिर इस अन्दाज से बहार आयी	,, ,,	१५-००
१५. देवता : कुर्सी के	,, ,,	१२-००
१६. ओ मेरे राजहंस !	,, ,,	१५-००
१७. वरूशाली मैनुस्क्रिप्ट		५०-००
१८. दी शुल्व सूत्र		४५-००
१९. ऋषि गाथा	विमल चन्द्र विमलेश	२०-००
२०. सत्यार्थ प्रकाश		४-५०
21. Light of Truth		20-00
२२. शिवरात्रि अंक १९८०		५-००
२३. वेदांक ,, १९८१		५-००
२४. वैदिक संस्कृत मदर आफ लैंग्वेजेज		१२-००
२५. लन्दन स्मारिका	सं० क्षितीश वेदालंकार	५०-००
२६. सत्यार्थ सुधा	आचार्य हरिदेव सिद्धान्तभूषण	२-००
२७. स्वराज्य के पथिक	डा० भक्तराम पाराशर	३०-००
२८. वैदिक पीयूष धारा	देवेन्द्र कुमार कपूर	१०-००
29. Secrets Motivating vedic Lores	,, ,,	35-00
३०. षड्दर्श समन्वय	बुद्ध देव मीरपुरी	२-५०
३१. त्यागमयी देवियाँ	आनन्द स्वामी सरस्वती	२-५०
32. Rigveda Samhita per Volume		50-00
३३. सत्संग प्रार्थना मन्त्र		२-००

स्थापना : १९३९

चण्डीगढ़ में स्थापित
१९५५

सी0 एल० अग्रवाल डी० ए० वी० मॉडल स्कूल सेक्टर ७ बी चण्डीगढ़

(सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकण्डरी एजूकेशन नई दिल्ली के साथ सम्बद्ध)

रजिस्ट्रेशन.............को होगी (सीटें बहुत कम)

मुख्य विशेषताएँ

१. उच्चतम योग्यता प्राप्त तथा अनुभवी स्टाफ।

२. सुन्दर तथा खुली बिल्डिंग।

३. एथलेटिक्स तथा जिमनेजियम के लिए सुविधायें उपलब्ध हैं। सर्वोत्तम जिमनास्ट श्री राजेश को राष्ट्रीय स्तर पर छात्रवृत्ति प्राप्त हुई।

४. ८वीं कक्षा तक सहशिक्षा, नौवीं तथा दसवीं कक्षाएँ केवल लड़कियों के लिये।

५. प्राइमरी कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भी की गई है। नर्सरी के लिए बढ़िया प्रबन्ध। बस-सेवा उपलब्ध।

६. महिलाओं को सिलाई सिखाने के लिए क्राफ्टसेंटर कार्यालय में ९ बजे प्रातः से २ बजे दोपहर तक सम्पर्क करें।

एस० मलिक
प्रिंसिपल

फोन नं० २५४२७

॥ ओ३म् ॥

स्थापित : सम्वत् १६१४ विक्रमी

इसवी सन् १८७७

फोन नं० २३३०

—: आर्य अनाथालय, फिरोजपुर छावनी-१५२००१ :—

ARYA ANATHALAYA, FEROZPUR CANTT-152001

स्थापित : महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के कर कमलों द्वारा।

संचालित : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली।

भारतवर्ष का सबसे पुराना और उत्तरी भारत का सबसे बड़ा अनाथालय है जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द जी के करकमलों से २६ अक्टूबर १८७७ में अनाथ, असहाय, समाज से तिरस्कृत बालक-बालिकाओं के संरक्षण एवं समाज में उचित स्थान दिलाने हेतु की गयी थी। आश्रम में बालक-बालिकाओं का पालन-पोषण, शिक्षा आदि का प्रबन्ध उचित ढंग से किया जाता है।

आप सभी दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि इस पावन पुनीत कार्य में दान देकर पुण्य के भागी बनें। आप सभी सज्जनों के सहयोग से ही इन बालक-बालिकाओं के जीवन को सही दिशा में ढाला जा सकता है।

धन्यवाद सहित।

मैनेजर
आर्य अनाथालय
फिरोजपुर छावनी

डी० ए० वी० कालेज जालन्धर

वर्ष १६८०-८१ की विशेष सफलतायें

* हमारे विद्यार्थी गुरु नानक देव विश्वविद्यालय की निम्न चौदह परीक्षाओं में प्रथम रहे : एम० ए० इंगलिश भाग २, एम० एस० सी० कैमिस्ट्री भाग २, एम० ए० संस्कृत भाग २, एम० ए० राजनीति भाग २, एम० ए० पंजाबी भाग २, एम० ए० संस्कृत भाग १, एम० ए० हिन्दी भाग १, एम० एस-सी० गणित भाग १, एम० एस-सी० कैमिस्ट्री भाग १, बी० ए० भाग ३ पंजाबी आनर्स, बी० ए० भाग ३ संस्कृत आनर्स, बी० एस-सी० भाग ३ नान मैडिकल, बी० ए० गणित आनर्स, बी० काम भाग १।

** क्रीड़ा के क्षेत्र में हमारे विद्यार्थियों ने गुरु नानक विश्वविद्यालय में क्रिकिट, अथलैटिक्स और बैडमिन्टन में चैम्पियनशिप जीती और बाक्सिग, लान टैनिस तथा क्रास कण्ट्री रेस में रनर्स-अप पोजिशन प्राप्त की।

*** गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के यूथ फैस्टिवल में हमारे विद्यार्थियों ने निम्न बारह क्षेत्रों में प्रथम स्थान प्राप्त किया : नाटक, समूह-गान, देशभक्ति सामूहिक-गान, समूह शब्द-गायन, लोक-गीत, शास्त्रीय गायन, सुगम संगीत, विशिष्ट परिधान, वाद्य-वृन्द संगीत, शास्त्रीय वाद्य संगीत, देशभक्ति-संगीत, गोष्ठी, शास्त्रीय नृत्य।

रघुनाथ मेहता
प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर

वेदों का अंग्रेजी भाष्य

ऋग्वेद के सात मंडलों का आठ जिल्दों में अंग्रेजी भाष्य छपकर तैयार

यह भाष्य दानवीर मेजर कपिल मोहन, अपने ज्येष्ठ भ्राता स्व० कर्नल वेद रत्न मोहन की पुनीत स्मृति में, वेद प्रतिष्ठान आर्यसमाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली को आर्थिक सहायता देकर करा रहे हैं।

भाष्यकार प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा वैदिक विद्वान् डॉ. स्वामी सत्य प्रकाश जी तथा गुरुकुल कांगड़ी के वयोवृद्ध स्नातक पं. सत्यकाम जी विद्यालंकार है।

इस भाष्य से योरोपियन तथा भारतीय विद्वानों के किये अंग्रेजी भाष्यों की सब भ्रान्तिपूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जावेंगी।

टिकाऊ कागज पर अतीव शुद्ध और सुन्दर छपाई हुई है। आकर्षक और मजबूत कपड़े की जिल्द है।

आज के युग में लगभग ५०० पृष्ठों का ग्रन्थ अत्यल्प लागत मात्र मूल्य ५० रुपये में।

इस भाष्य के सोल एजेण्ट एस० चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, पहाड़ गंज, नयी दिल्ली हैं। ग्रन्थ प्राप्ति के लिये इन्हें ही लिखना चाहिए।

शिवकुमार शास्त्री
महासचिव
वेद प्रतिष्ठान, आर्य समाज, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१
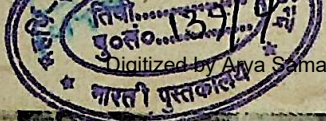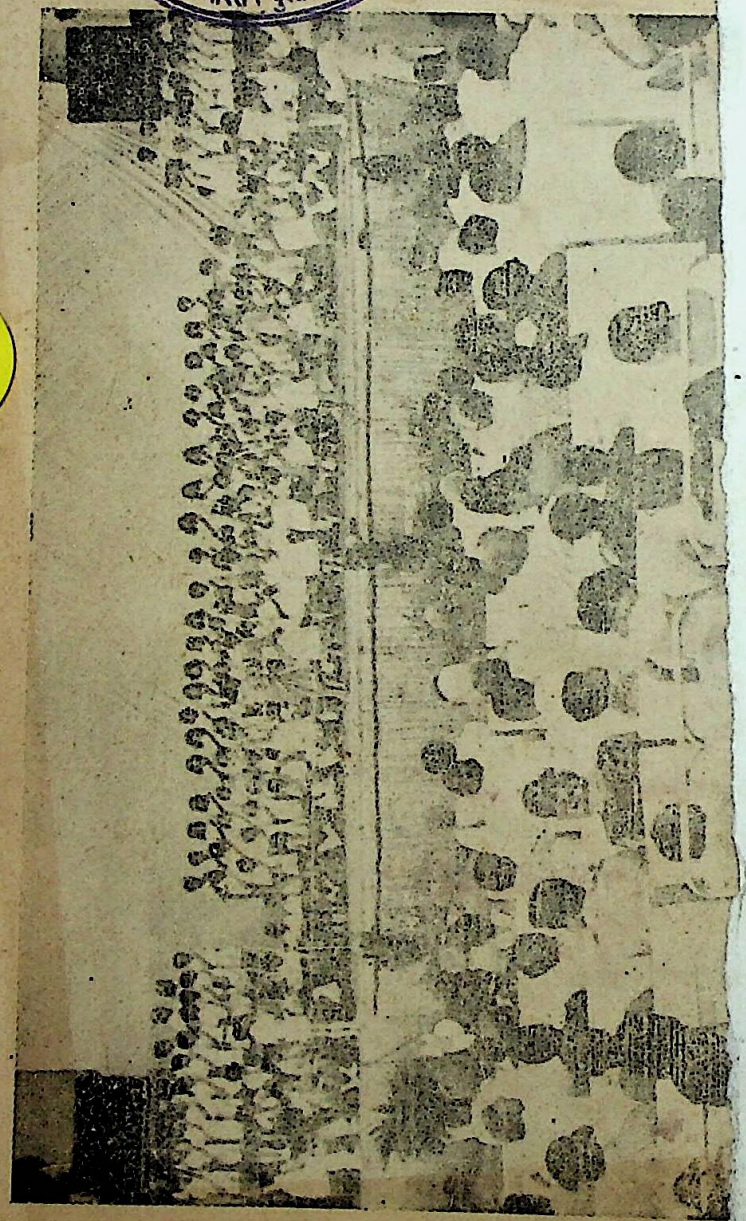
मुद्रक :—प्रकाशक श्री रामनाथ सहगल सभा मंत्री द्वारा एस० नारायण ए
पहाड़ी धीरज, दिल्ली से छपवा कर कार्यालय 'आर्य जगत्' मन्दिर मा
प्रकाशित । स्वामित्व—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मंदिर मार्ग, न